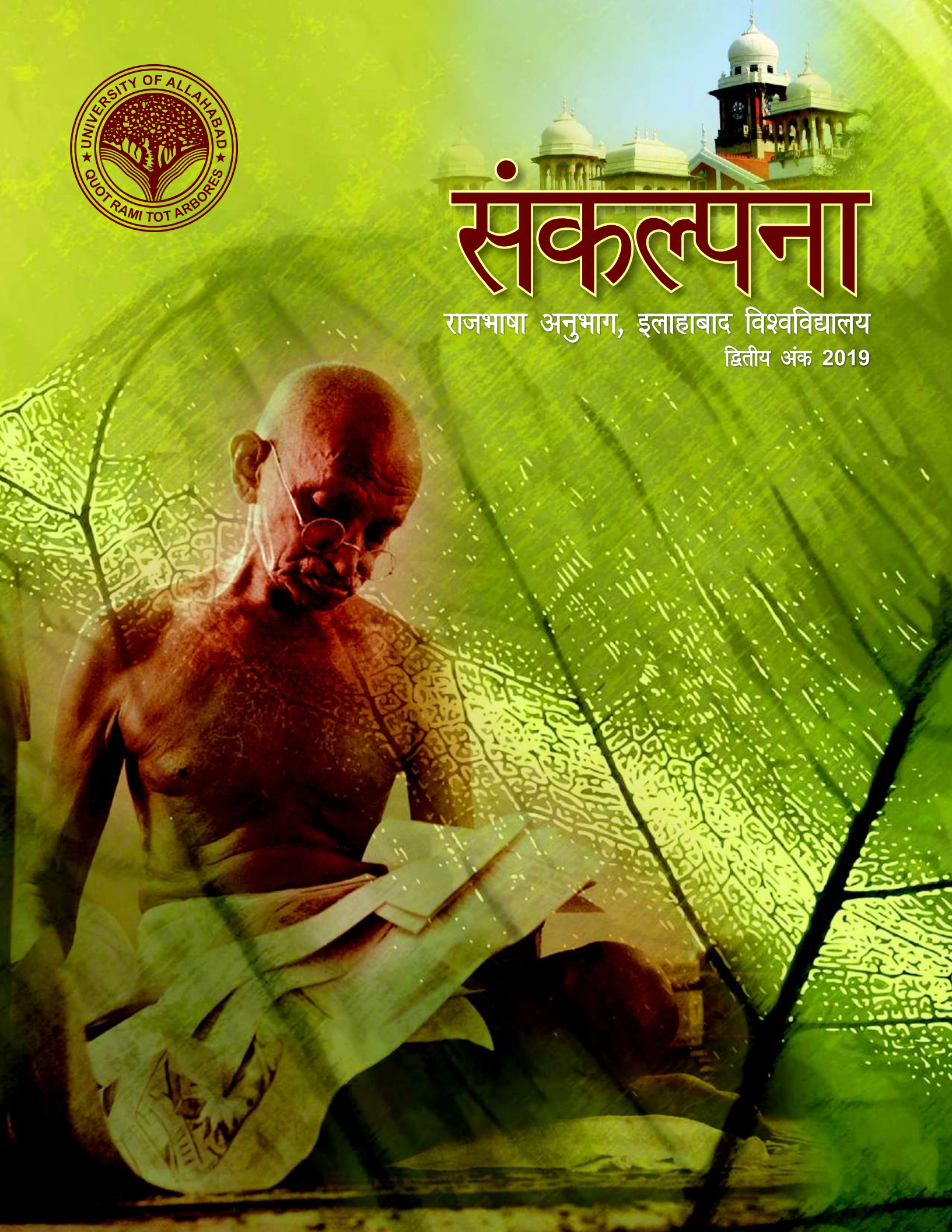

संकल्पना

राजभाषा अनुभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

द्वितीय अंक 2019

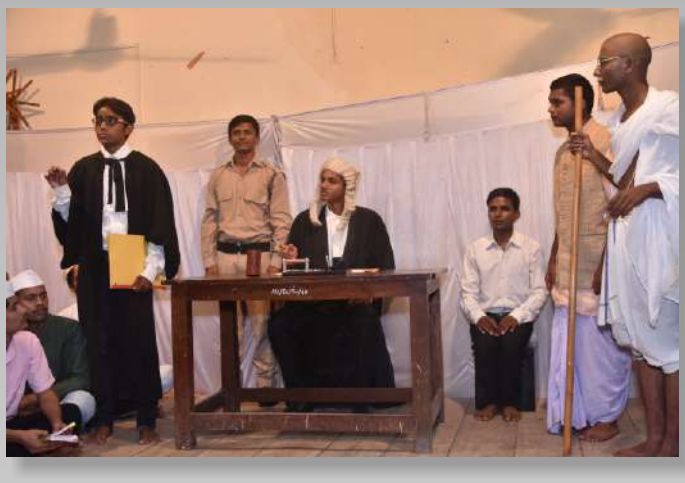

राजभाषा अनुभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

e-mail: rajbhasha.au@gmail.com

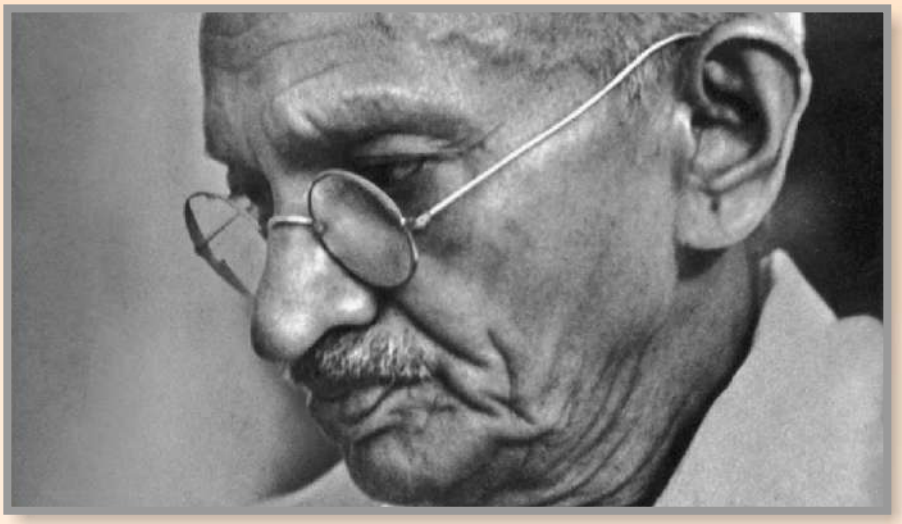

दुनिया में ऐसे लोग है जो इतने भूखे हैं
कि भगवान उन्हें किसी और रुप में
नहीं दिख सकता सिवाय रोटी के रुप में ।

–महात्मा गाँधी

राजभाषा अनुभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

e-mail: rajbhasha.au@gmail.com

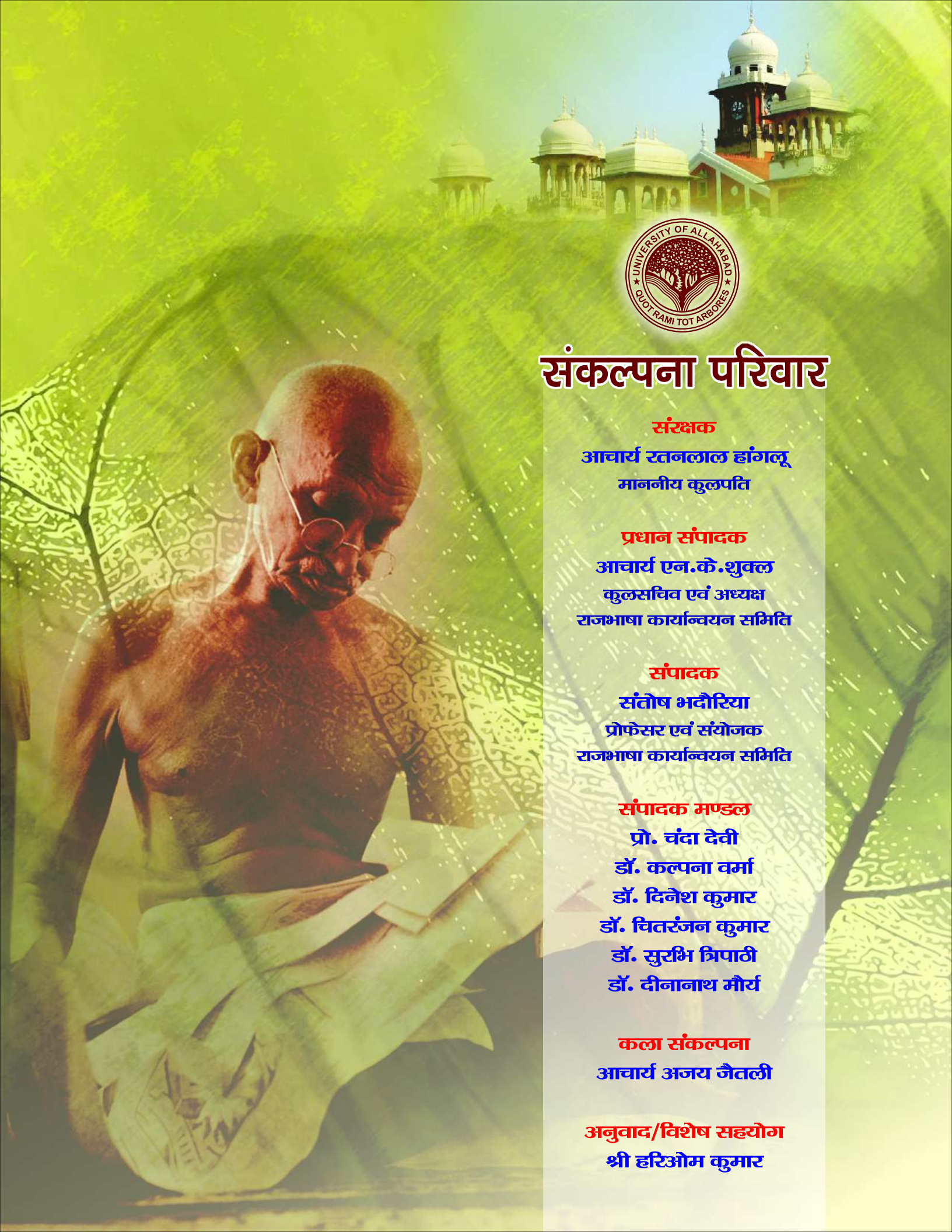

संकल्पना परिवार

संरक्षक

आचार्य रतनलाल हांगलू

माननीय कुलपति

प्रधान संपादक

आचार्य एन.के.शुक्ल

कुलसचिव एवं अध्यक्ष

राजभाषा कार्यान्वयन समिति

संपादक

संतोष भदौरिया

प्रोफेसर एवं संयोजक

राजभाषा कार्यान्वयन समिति

संपादक मण्डल

प्रो. चंदा देवी

डॉ. कल्पना वर्मा

डॉ. दिनेश कुमार

डॉ. चितरंजन कुमार

डॉ. सुरभि त्रिपाठी

डॉ. दीनानाथ मौर्य

कला संकल्पना

आचार्य अजय जैतली

अनुवाद/विशेष सहयोग

श्री हरिओम कुमार

अनुक्रम

क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ सं0
01	संदेश- मानव संसाधन विकास मंत्री	05
02	संदेश- कुलपति	06
03	संदेश- कुलसचिव	07
04	सम्पादकीय	09
05	गाँधी जी के कुछ प्रसिद्ध भाषण	13
06	कविता- साबरमती के संत : कवि प्रदीप	17
07	कविता- गाँधी : हरिवंशराय बच्चन	17
08	कविता- बापू के प्रतिः सुमित्रानंदन पंत	18
09	कविता- बापूः रामधारी सिंह दिनकर	18
10	दस्तावेज- 'हिंद स्वराज' की अवधारणा को लेकर गांधी का पत्र जवाहरलाल नेहरू के नाम	19
11	कविता- गांधी के चित्र को देखकर : केदारनाथ अग्रवाल	19
12	दस्तावेज- राष्ट्रभाषा का प्रश्न	20
13	लेख- हिन्द स्वराज : दो सवाल : सुधीर चंद्र	22
14	कविता- लाल गुलाब सरीखे बापू : गोपीचंद नारंग	27
15	कविता- तुम कागज पर लिखते हो : भवानी प्रसाद मिश्र	28
16	कविता- युगावतार गांधी : सोहनलाल द्विवेदी	28
17	लेख- महात्मा गांधी और इलाहाबाद विश्वविद्यालय : डॉ. कुमार वीरेन्द्र	29
18	लेख- गांधीवाद, हिन्द स्वराज और हमारा समय : डॉ. दिनेश कुमार	34
19	लेख- बुन्देली लोक साहित्य और महात्मा गाँधी : डॉ. बहादुर सिंह परमार	41
20	बा-बापू के जीवन से जुड़े कुछ रोचक प्रसंग : अरविंद मोहन	46
21	कविता- गांधी जी के जन्मदिन पर : दुष्यंत कुमार	50
22	लेख- महात्मा गाँधी का साध्य एवं साधन सम्बन्धित चिन्तन : डॉ. श्याम कान्त	51
23	कविता- पंचधातु : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	54
24	लेख- गांधी का निर्भय भाव : डॉ. रमाशंकर	55
25	कविता- गांधी तो हमारा भोला है : अकबर इलाहाबादी बापू महान : नार्गाजुन	58
26	लेख- गांधी, हिन्दी, हिन्दुस्तानी : डॉ. श्रीभगवान सिंह	59
27	कविता- गांधी के प्रति : मुकुटधर पाण्डेय	64

आपकी अनुमति के बिना आपको कोई
दुख नही पहुँचा सकता है।

–महात्मा गाँधी

संदेश

रमेश पोखरियाल 'निशंक'
Ramesh Pokhriyal 'Nishank'

सत्यमेव जयते

मंत्री
मानव संसाधन विकास
भारत सरकार
MINISTER
HUMAN RESOURCE DEVELOPMENT
GOVERNMENT OF INDIA

संदेश

प्रिय साथियों,

भाषा किसी भी राष्ट्र की सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहर की संवाहिका होती है। कोई भी देश अपनी भाषा के बिना अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्व को मौलिक रूप से परिभाषित नहीं कर सकता है। राष्ट्र की शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रगति में उस राष्ट्र की भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। किसी भी सुदृढ़ एवं मजबूत राष्ट्र की पहचान इस बात से होती है कि उसकी अपनी भाषा कितनी व्यापक एवं समृद्ध है।

संविधान निर्माताओं द्वारा संविधान में, अन्य बातों के साथ-साथ, प्रावधान किया कि संघ हिंदी भाषा का विकास करे और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए संस्कृत और अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

साथियों, संविधान द्वारा यह जो दायित्व हमें सौंपा गया है हमें उसका निर्वहन करना है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय हिंदी के साथ-साथ अन्य सभी भारतीय भाषाओं के विकास के लिए प्रतिबद्ध है। आज हम, हिंदी में ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं में भी उत्कृष्ट साहित्य का सृजन कर रहे हैं। हमें इन भाषाओं को साथ लेकर हिंदी का विकास करना है।

'हिंदी दिवस' के अवसर पर मंत्रालय का प्रत्येक कार्यालय इस पर्व को उत्साहपूर्वक मनाए, विभिन्न आयोजन करे और यह निश्चय करे कि सरकारी कार्य अधिक से अधिक हिंदी में हो। सरकारी कार्य हिंदी में करने के लिए आज अनेक टूल्स उपलब्ध हैं। हम इनका उपयोग करें और संकल्प लें कि हम हिन्दी के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए पूर्ण समर्पण एवं निष्ठाभाव से कार्य करेंगे।

हिन्दी दिवस के अवसर पर आप सभी को मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

जय हिंद!

(रमेश पोखरियाल 'निशंक')

स्वच्छ भारत

सबको शिक्षा, अच्छी शिक्षा।

Room No. 3, 'C' Wing, 3rd Floor, Shastri Bhavan, New Delhi-110 115
Phone : 91-11-23782387, 23782698, Fax : 91-11-23382365
E-mail : minister.hrd@gov.in

इलाहाबाद विश्वविद्यालय
University of Allahabad

आचार्य रतन लाल हांगलू
Prof. Rattan Lal Hangloo
कुलपति
Vice-Chancellor

प्रयागराज - 211002
Prayagraj - 211002
Tel. : Off. (0532) 2461089, 2461157
Fax : (0532) 2461157
e-mail : vcoffice@allduniv.ac.in

मुझे अत्यंत प्रसन्नता है कि हमारे विश्वविद्यालय का राजभाषा अनुभाग गृह पत्रिका **"संकल्पना "** के इस अंक को गांधी जी के **150** वर्ष पर प्रकाशित कर रहा है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय देश के अग्रणी शैक्षणिक संस्थानों में से एक है। विश्वविद्यालय को सन् **2005** में केन्द्रीय दर्जा प्रदान करते हुए **"राष्ट्रीय महत्व का संस्थान"** घोषित किया गया है।

महात्मा गांधी ने कहा था कि भाषा के बिना कोई भी राष्ट्र गूँगा होता है। वे समझते थे कि "हिंदुस्तानी" ही आजाद भारत की राष्ट्रभाषा बनने लायक है। इसी कारण भारतीय संविधान सभा द्वारा 14 सितंबर,1949 को 'हिंदी' को संघ की राजभाषा के रूप में अंगीकार किया गया। परिणामस्वरूप भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार यह प्रावधान किया गया है कि संघ की राजभाषा 'हिंदी' एवं लिपि 'देवनागरी' होगी ।

साहित्य समाज का दर्पण होता है और पत्रिकाएं इसकी वाहक। राजभाषा अनुभाग की पत्रिका को कर्मचारियों व शिक्षक समुदाय के रचनात्मक एवं गंभीर वैचारिक लेखन का मंच होना चाहिए। मुझे पूरा विश्वास है कि "संकल्पना" का यह अंक इस दायित्व का निर्वहन करने में सक्षम होगा।

आज का युग तकनीकी का युग है। हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न ई-टूल्स आज उपलब्ध हैं। हमें इन टूल्स का प्रयोग कर तकनीकी क्षेत्र में भी हिंदी समृद्ध बनाना है। हमारे विश्वविद्यालय का राजभाषा अनुभाग, राजभाषा विभाग गृह मंत्रालय के वार्षिक कार्यक्रम के अनुसार वर्ष भर सक्रिय रहता है। यह पत्रिका भी उसी सक्रियता का एक प्रमाण है। आशा है यह लगातार निर्बाध प्रकाशित होती रहेगी।

मैं राजभाषा अनुभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय को गृह-पत्रिका "संकल्पना" के प्रकाशन के लिए बधाई एवं और अधिक दायित्वपूर्ण सक्रियता के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएं देता हूँ। आप सभी को हिंदी दिवस की शुभकामनाएं।

शुभकामनाओं सहित,

रतन लाल हांगलू

(आचार्य रतन लाल हांगलू)

संदेश

इलाहाबाद विश्वविद्यालय
University of Allahabad

आचार्य एन० के० शुक्ल
Prof. N.K. Shukla
कुलसचिव
Registrar

Tel. : Off. (0532) 2461083
Fax : (0532) 2461009
Mob. : 09415214363
e-mail : registraraualld@gmail.com
: nkshukla@allduniv.ac.in
: nksjkiapt@gmail.com

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्ता हो रही है कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय की राजभाषा गृह पत्रिका **"संकल्पना"** महात्मा गांधी की **150** वीं जयंती पर प्रकाशित की जा रही है। हिंदी हमारी राजभाषा है और हमारा विश्वविद्यालय **'क'** क्षेत्र में स्थित है। इस कारण राजभाषा पत्रिका का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। हम राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, एवं मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा निर्धारित हिंदी पत्राचार का लक्ष्य पूरा करने के लिए वचनबद्ध हैं।

आज का युग कम्प्यूटर का युग है, भाषा के क्षेत्र में भी नित नई टेक्नोलॉजी विकसित हो रही है । अत: हिंदी में हम अपना कार्यालयीन कामकाज कम्प्यूटर पर करें। इसके लिए राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा निर्धारित साफ्टवेयरों का प्रयोग करके हिंदी पत्राचार को और सरल बना सकते हैं।

अन्त में संकल्पना के प्रकाशन के शुभ अवसर पर हिंदी में कामकाज करने के आवाहन के साथ सभी को हार्दिक शुभकामनाएं ।

तरेन्द्र कुमार शुक्ल

(आचार्य एन0 के0 शुक्ल)
अध्यक्ष
राजभाषा का. समिति

खुद वो बदलाव बनिये
जो आप दुनिया में देखना चाहते हैं।

–महात्मा गाँधी

संपादकीय

प्रोफेसर संतोष भदौरिया
Prof. Santosh Bhadauria
संयोजक
राजभाषा कार्यान्वयन समिति

राजभाषा अनुभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

हिन्दुस्तान में सदियों बाद महात्मा गांधी जैसा दृष्टा पैदा हुआ, जिसने अपने प्रखर मौलिक चिन्तन से अगतिशील भारतीय समाज को स्पंदित किया। अपने चिन्तन को स्वयं के जीवन में उतारा, उसको जिया। 'कथनी और करनी' के अन्तर को लगभग मिटा दिया। उन्होंने कहा कि मेरा जीवन ही मेरा दर्शन है। उनके जन्म के 150 वर्ष पूरे होने पर आज देश और दुनिया में उनके जीवन और विचार को समसामयिक परिस्थितियों में जाँचा परखा जा रहा है। लगभग 50 हजार पृष्ठों और 100 खण्डों में प्रकाशित 'सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय' की उपलब्धता के बाद भी आज हमारे जेहन में यह सवाल यथावत है कि हम गांधी को कितना जानते हैं? उत्तर यही है कि हम उन्हें बहुत कम जानते हैं। उनके लेखन से अपरिचित हैं।

किवदतिंयों पर भरोसा करते हैं। 'सत्य के प्रयोग' और 'हिन्द स्वराज' जैसी महत्वपूर्ण कृतियों में प्रस्तुत 'सभ्यता समीक्षा' से अनभिज्ञ हैं। यह सुखद संयोग है कि उनके जन्म के 150वें वर्ष में उनके विचारों को नये सिरे से जानने, समझने और बहस में लाने के अनेक प्रयास हो रहे हैं।

अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में सभ्यता को परिभाषित करते हुए गांधी कहते हैं कि 'सभ्यता वह आचरण है जिससे आदमी अपना फर्ज अदा करता है। फर्ज अदा करने का मतलब है नीति का पालन करना। नीति के पालन का मतलब है अपने मन व इन्द्रियों को वश में रखना। ऐसा करते हुए हम अपने (अपनी असलियत) को पहचानते हैं। यही सभ्यता है। इससे जो उल्टा है वह बिगाड़ करने वाला है'। हम सभी जानते है कि गांधी हिंसा, बर्बरता, घृणा, अमानवीयता के बरअक्स सत्य, अहिंसा, प्रेम और करुणा को प्रस्तावित करते हैं। सत्य के प्रति आग्रह उनका मूल मंत्र है। संवाद को अपनी जीवन शैली बना लेने वाले गांधी के बारे मे 'थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी' की खोज करने वाले आइंस्टीन ने कहा था कि 'आने वाली पीढ़ियां यह विश्वास नहीं करेंगी कि हांड़ मांस का एक ऐसा आदमी कभी इस दुनिया में हुआ था'। दुनिया के तमाम देशों के जननायकों ने गांधी से प्रेरित होकर अपने समाज में फैली रंग और नस्ल भेदी सभ्यताओं से दो–दो हाथ किए। हमारे सामने बर्बर हो रही दुनिया को अधिक से अधिक मानवीय बनाए जाने की चुनौती तो आज भी है। सन् 1931 में लन्दन में भारतीय विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए गांधी कहते हैं कि–'मुझे अपने देशवासियों कि पीड़ाओं के निवारण से भी ज्यादा चिंता मानव प्रकृति के बर्बरीकरण को रोकने की है'। यह हमारा भी जरूरी कार्यभार है।

'संकल्पना' का यह अंक गांधी की रचनाशीलता को समर्पित है। जिन साथी रचनाकारों ने इसको संभव करने में सहयोग किया, संकल्पना टीम उनकी आभारी है। दस्तावेज के रुप में जिन दिवंगत रचनाकारों की रचनायें पत्रिका में शामिल हैं, उनकी स्मृति को हम नमन करते हैं। राजभाषा अनुभाग का यह विनम्र प्रयास आपको कैसा लगा ? आपकी पाठकीय प्रतिक्रिया का स्वागत है।

संतोष भदौरिया

(संतोष भदौरिया)

राजभाषा की गतिविधियाँ

अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस
21 फरवरी 2019
गोष्ठी एवं नाट्य मंचन
मोलाराम का जीव (हरिशंकर परसाई) (सिरी उपमा जोग (शिवमूर्ति)
कथानायक ''मुंशी प्रेमचन्द'' की
कहानियों का मंचन
राजभाषा पखवाड़ा 2018
समापन समारोह
FOUNDATION DAY

राजभाषा की गतिविधियाँ

कथानायक "मुंशी प्रेमचन्द" की
कहानियों का मंचन
राजभाषा पखवाड़ा 2018
समापन समारोह
132nd FOUNDATION DAY
July 2019

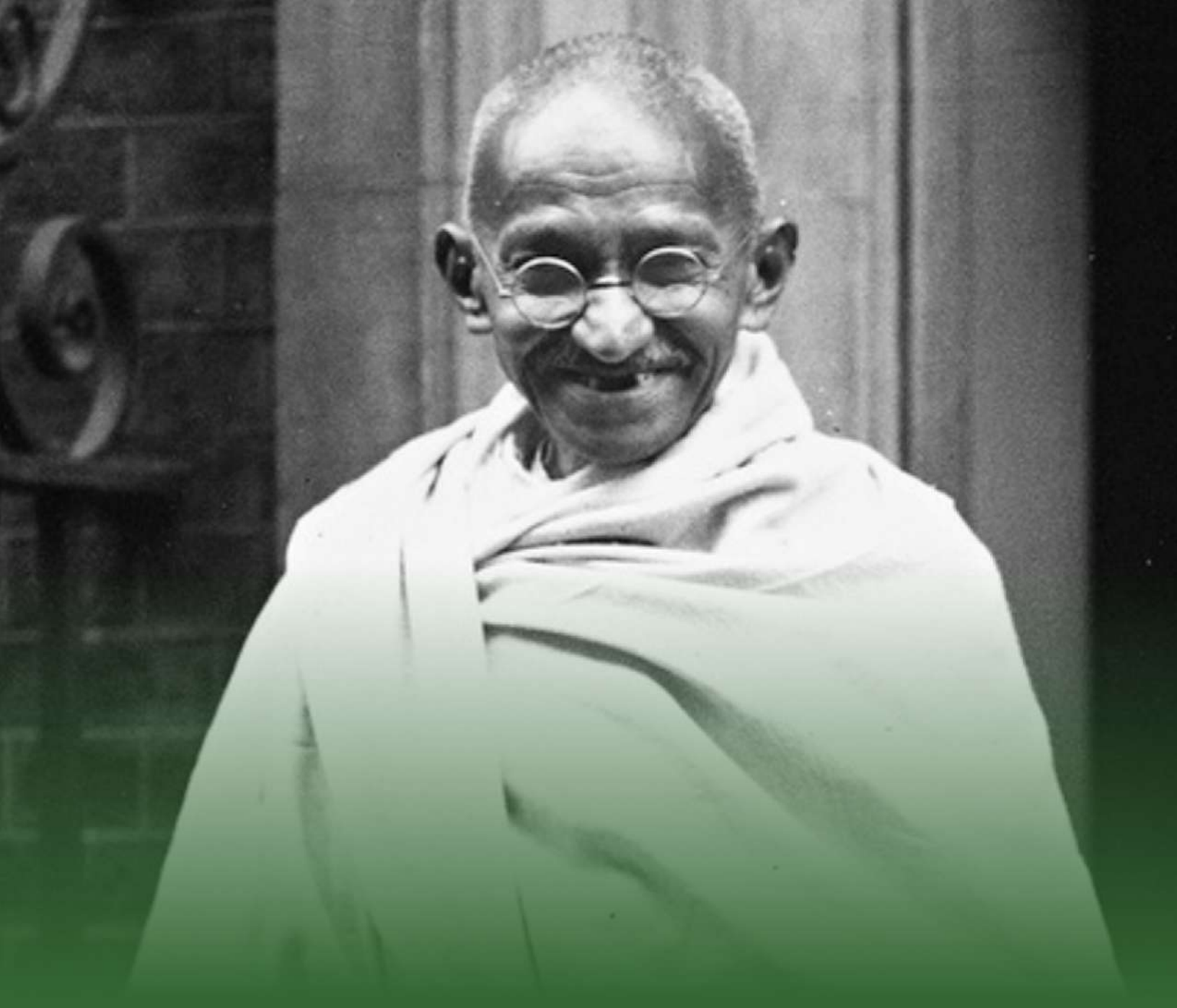

तभी बोलो जब वो मौन से बेहतर हो।

-महात्मा गाँधी

गाँधी जी के कुछ प्रसिद्ध भाषण

भाषण : हिन्दी साहित्य सम्मेलन में

-इन्दौर मार्च 29, 1918

युवराज, सभापति, भाइयों और बहनों,

हमारे पूजनीय और स्वार्थत्यागी नेता पण्डित मदनमोहन मालवीय नहीं आ सके। मैंने उनसे प्रार्थना की थी कि जहाँ तक बने सम्मेलन में उपस्थित रहियेगा। उन्होंने वचन दिया था कि वे जरूर आयेंगे। पण्डित जी सम्मेलन में तो उपस्थित नहीं हुए, पर उन्होंने एक पत्र भेज दिया है। मैं उम्मीद करता था कि यदि पंडित जी नहीं आयेंगे, तो उनका पत्र अवश्य आयेगा, और उसे मैं आप लोगों के सामने उपस्थित कर सकूँगा। यह पत्र मुझे आज मिला है। मैंने स्वागतकारिणी सभा को हिन्दी के विषय में विद्धानों से दो प्रश्नों पर सम्मति लेने के लिए कहा था, उन्हीं का उत्तर पंडित जी ने अपने पत्र में दिया है।

(मालवीय जी का पत्र पढ़कर गांधी जी ने इस प्रकार कहा)

भाइयों और बहनों,

मैं दिलगीर हूँ कि जो व्याख्यान सम्मेलन में देने का मेरा इरादा था, वह आपके सामने नहीं रख सका हूँ। मैं बड़ी झंझटों में पडा हूँ। मेरी इस समय बड़ी दुर्दशा है। इससे मैं काम नहीं कर सका। पर मैंने वादा किया था कि मैं आऊँगा, और आ गया, किन्तु जो चीज सामने रखने का इरादा था, नहीं रख सका।

यह भाषण का विषय बड़ा भारी और बड़ा ही महत्वपूर्ण है। यदि सब नेता सब काम छोड़कर केवल इसी विषय पर लगे रहे, तो बस है। यदि हम लोग भाषा के प्रश्न को गौण समझें या इधर से मन हटा लेंगे, तो इस समय लोगों में जो प्रवृत्ति चल रही है, लोगों के हदयों में जो भाव उत्पन्न हो रहा है, वह निष्फल हो जायेगा।

भाषा माता के समान है। माता पर हमारा जो प्रेम होना चाहिए, वह हम लोगों में नहीं है। वास्तव में मुझे तो ऐसे सम्मेलनों से प्रेम नहीं है। तीन दिन का जलसा होगा, तीन दिन कह सुनकर हमें (आगे) जो करना चाहिए, उसे हम भूल जायेंगे। सभापति के भाषण में तेज नहीं है, जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह वस्तु उसमें नहीं है। इससे बड़ी कंगाली की मैं कल्पना नहीं कर सकता। हम पर और हमारी प्रजा के ऊपर एक बड़ा आक्षेप यह है कि हमारी भाषा में तेज नहीं है। जिनमें विज्ञान नहीं है, उनमें तेज नहीं है।जब हममें तेज आयेगा तभी हमारी प्रजा में और हमारी भाषा में तेज आयेगा। विदेशी भाषा द्वारा आप जो स्वातंत्र्य चाहते है वह नहीं मिल सकता क्योंकि उसमें हम योग्य नहीं हैं। प्रसन्नता की बात है कि इन्दौर में सब कार्य हिन्दी में होता है। पर क्षमा कीजियेगा, प्रधानमंत्री साहब का जो पत्र आया है, वह अंग्रेजी में है। इन्दौर की प्रजा यह बात नहीं जानती होगी, पर मैं उसे बतलाता हूँ कि यहाँ अदालतों में प्रजा की अर्जियाँ हिन्दी में ली जाती हैं, पर न्यायधीश के फैसले और वकील-बैरिस्टरों की बहस अंग्रेजी में होती है। मैं पूछता हूँ कि इन्दौर में ऐसा क्यों होता है ? हाँ, मैं यह मानता हूँ कि अंग्रेजी राज्य में यह आन्दोलन सफल नहीं हो सकता, यह ठीक है, पर देशी राज्यों में तो सफल होना ही चाहिए। शिक्षित वर्ग,जैसा कि माननीय पंडित जी ने अपने पत्र में दिखाया है, अंग्रेजी के मोह में फँस गया है और अपनी राष्ट्रीय मातृभाषा से उसे असन्तोष हो गया है। पहली माता (अंग्रेजी) से हमें जो दूध मिल रहा है, उसमें जहर और पानी मिला हुआ है और दूसरी माता (मातृभाषा) से शुद्ध दूध मिल सकता है। बिना इस शुद्ध दूध के मिले हमारी उन्नति होना असम्भव है। पर जो अन्ध है, वह देख नहीं सकता, गुलाम यह नहीं जानता कि अपनी बेड़ियाँ किस तरह तोड़े। पचास वर्षों से हम अंग्रेजी के मोह में फँसे हैं। हमारी प्रजा अज्ञान में डूबी रही है। सम्मेलन को इस ओर विशेष रूप से खयाल रखना चाहिए। हमें ऐसा उद्योग करना चाहिए कि एक वर्ष में राजकीय सभाओं और कांग्रेस में प्रान्तीय भाषाओं में और अन्य सभा समाज और सम्मेलनों में अंग्रेजी का एक भी शब्द सुनाई न पड़े। हम अंग्रेजी का व्यवहार बिलकुल त्याग दें। अंग्रेजी सर्वव्यापक भाषा है पर यदि अंग्रेज सर्वव्यापक न रहेंगे, तो अंग्रेजी भी सर्वव्यापक न रहेगी। हमें अब अपनी मातृभाषा की और उपेक्षा करके उसकी हत्या नहीं करनी चाहिए। जैसे अंग्रेज अपनी मादरी जबान अंग्रेजी में ही बोलते और सर्वथा उसे ही व्यवहार में लाते हैं वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनने का गौरव प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। अब मैं अपना लिखा हुआ भाषण पढ़ता हूँ।

श्रीमान् सभापति महाशय, प्यारे प्रतिनिधिगण, बहनों और भाइयो,

आपने मुझे इस सम्मेलन का सभापतित्व देकर कृतार्थ किया है। हिन्दी साहित्य की दृष्टि से मेरी योग्यता इस स्थान के

लिए कुछ भी नहीं है, यह मैं खूब जानता हूँ। मेरी हिन्दी भाषा का असीम प्रेम ही मुझे यह स्थान दिलाने का कारण हो सकता है। मैं उम्मीद करता हूँ कि प्रेम की परीक्षा में मैं हमेशा उत्तीर्ण होऊँगा। साहित्य का प्रदेश भाषा की भूमि जानने पर ही निश्चित हो सकता है। यदि हिन्दी भाषा की भूमि सिर्फ उत्तर प्रान्त की होगी, तो साहित्य का प्रदेश संकुचित रहेगा। यदि हिन्दी भाषा राष्ट्रीय भाषा होगी, तो साहित्य का विस्तार भी राष्ट्रीय होगा। जैसे भाषक वैसी भाषा। भाषा-सागर में स्नान करने के लिए पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-उत्तर से पुनीत महात्मा आयेंगे, तो सागर का महत्व स्नान करने वालों के अनुरूप होना चाहिए। इसलिए साहित्य की दृष्टि से भी हिन्दी भाषा का स्थान विचारणीय है।

हिन्दी भाषा की व्याख्या का थोड़ा सा ख्याल करना आवश्यक है। मैं कई बार व्याख्या कर चुका हूँ कि हिन्दी भाषा वह भाषा है, जिसको उत्तर में हिन्दू व मुसलमान बोलते हैं और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है। यह हिन्दी एकदम संस्कृतमयी नहीं है, न वह एकदम फारसी शब्दों से लदी हुई है। देहाती बोली में जो माधुर्य मैं देखता हूँ, वह न लखनऊ में मुसलमान भाइयों की बोली में और न प्रयाग के पंडितों की बोली में पाया जाता है। भाषा वही श्रेष्ठ है, जिसको जनसमूह सहज में समझ लें। देहाती बोली सब समझते हैं। भाषा का मूल करोड़ों मनुष्य रूपी हिमालय में मिलेगा, और उसमें ही रहेगा। हिमालय में से निकली हुई गंगाजी अनन्त काल तक बहती रहेंगी। ऐसी ही देहाती हिन्दी का गौरव रहेगा और जैसे छोटी-सी पहाड़ी से निकला हुआ झरना सुख जाता है, वैसे ही संस्कृतमयी तथा फारसीमयी हिन्दी की दशा होगी।

हिन्दू-मुसलमानों के बीच जो भेद किया जाता है, वह कृत्रिम है। ऐसी ही कृत्रिमता हिन्दी व उर्दू के भेद में है। हिन्दुओं की बोली से फारसी शब्दों का सर्वथा त्याग और मुसलमानों की बोली से संस्कृत का सर्वथा त्याग अनावश्यक है। दोनों का स्वाभाविक संगम गंगा जमुना के संगम सा शोभित और अचल रहेगा। मुझे उम्मीद है कि हम हिन्दी उर्दू के झगड़े में पड़कर अपना बल क्षीण नहीं करेंगे। लिपि की कुछ तकलीफ जरूर है। मुसलमान भाई अरबी लिपि में ही लिखेंगे। हिन्दू बहुत करके नागरी लिपि में लिखेंगे। राष्ट्र में दोनों को स्थान मिलना चाहिए। अमलदारों को दोनों लिपियों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। इसमें कुछ कठिनाई नहीं है। अन्त में जिस लिपि में ज्यादा सरलता होगी, उसकी विजय होगी। भारतवर्ष में परस्पर व्यवहार के लिए एक भाषा होनी चाहिए, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। यदि हम हिन्दी-उर्दू का झगड़ा भूल जायें, तो हम जानते हैं कि मुसलमान भाइयों की तो उर्दू ही राष्ट्रीय भाषा है। इस बात से सहज में ही सिद्ध हो जाता है कि हिन्दी या उर्दू मुगलों के जमाने से राष्ट्रीय भाषा बनती जाती थी। होनी चाहिए, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। यदि हम हिन्दी-उर्दू का झगड़ा भूल जायें, तो हम जानते हैं कि मुसलमान भाइयों की तो उर्दू ही राष्ट्रीय भाषा है। इस बात से सहज में ही सिद्ध हो जाता है कि हिन्दी या उर्दू मुगलों के जमाने से राष्ट्रीय भाषा बनती ।

आज भी हिन्दी से स्पर्धा करने वाली दूसरी कोई भाषा नहीं है। हिन्दी-उर्दू का झगड़ा छोड़ने से राष्ट्रीय भाषा का सवाल सरल हो जाता है। हिन्दुओं को फारसी शब्द थोड़े बहुत जानने पड़ेंगे। इस्लामी भाइयों को संस्कृत शब्दों का ज्ञान सम्पादन करना पड़ेगा। ऐसे लेन-देन से इस्लामी भाषा का बल बढ़ जायेगा, और हिन्दू मुसलमानों की एकता का एक बड़ा साधन हमारे हाथ में आ जायेगा। अंग्रेजी भाषा का मोह दूर करने के लिए इतना अधिक परिश्रम करना पड़ेगा कि हमें लाजिम है कि हम हिन्दी-उर्दू का झगड़ा न उठावें। लिपि की तकरार भी हमको नहीं करनी चाहिए। अंग्रेजी भाषा राष्ट्रीय भाषा क्यों नहीं हो सकती, अंग्रेजी भाषा का बोझ प्रजा के ऊपर रखने से क्या हानि होती है, हमारी शिक्षा का माध्यम आज तक अंग्रेजी होने से प्रजा कैसे कुचल दी गई है। हमारी जातीय भाषा क्यों कंगाल हो रही है- इन सब बातों पर अपनी राय भागलपुर और भड़ौच के व्याख्यानों में दे चुका हूँ, इसीलिए यहाँ मैं फिर नहीं देना चाहता। इन दोनों व्याख्यानों में से भाषा-सम्बन्धी भाग में इस व्याख्यान के परिशिष्ट में रख दूँगा। हकीकत में, इस बात में सन्देह नहीं हो सकता कि हमारे कविवर सर रवीन्द्रनाथ टैगोर, विदुषी एनी बेसेंट, लोकमान्य तिलक और अन्यान्य प्रतिष्ठित और आप्त व्यक्तियों का मन्तव्य इस विषय में ऐसा ही है। कार्य की सिद्धि में कठिनाइयाँ तो होंगी ही, किन्तु उसका उपाय करना इस सभा पर निर्भर है। लोकमान्य तिलक महाराज ने अपना अभिप्राय कार्य करके बता दिया है। उन्होंने 'केसरी' और 'मराठा' में हिन्दी विभाग शुरू कर दिया है। भारतरत्न पंडित मदनमोहन मालवीय जी का अभिप्राय भी हिन्दुस्तान में अज्ञात नहीं है। तो भी हमें मालूम है कि हमारे कई विद्धान नेताओं का अभिप्राय है कि कुछ वर्षो तक तो एक अंग्रेजी ही राष्ट्रीय भाषा रहेगी। इन नेताओं से हम विनयपूर्वक कहेंगे कि अंग्रेजी के इस मोह से प्रजा पीड़ित हो रही है। अंग्रेजी शिक्षा पाने वालों के ज्ञान का लाभ प्रजा को बहुत ही कम मिलता है,

और अंग्रेजी शिक्षित वर्ग और आम लोगों के बीच बड़ा दरियाव आ पड़ा है। कहना आवश्यक नहीं कि मैं अंग्रेजी भाषा से द्वेष नहीं करता हूँ। अंग्रेजी साहित्य भंडार से मैंने भी बहुत रत्नों का उपयोग किया है। अंग्रेजी भाषा की मारफत हमें विज्ञान आदि का खूब ज्ञान लेना है। अंग्रेजी का ज्ञान भारतवासियों के लिए बहुत आवश्यक है। लेकिन इस भाषा को उसका उचित स्थान देना एक बात है उसकी जड़ पूजा करना दूसरी बात है।

हिन्दी-उर्दू राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए, इस बात को सिर्फ स्वीकार करने से हमारा मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता है। तो फिर किस प्रकार हम सिद्धि पा सकेंगे। जिन विद्धानों ने इस मण्डप को सुशोभित किया है, वे भी अपनी वक्तृता से हमको इस विषय में जरूर कुछ सुनायेंगे। मैं सिर्फ भाषा-प्रचार के बारे में कुछ कहूँगा। भाषा प्रचार के लिए हिन्दी शिक्षक होना चाहिए। हिन्दी बंगाली सीखने वालों के लिए एक छोटी सी पुस्तक मैंने देखी है। वैसी मराठी में भी है। अन्य भाषा भाषियों के लिए ऐसी किताबें देखने में नहीं आई हैं। यह काम करना जैसा सरल है, वैसा ही आवश्यक है। मुझे उम्मीद है कि यह सम्मेलन इस कार्य को शीघ्रता से अपने हाथ में लेगा। ऐसी पुस्तकें विद्वान और अनुभवी लेखकों द्वारा लिखवानी चाहिए। सबसे कष्टदायी मामला द्रविड़ भाषाओं के लिए है। वहाँ तो कुछ प्रयत्न ही नहीं हुआ। हिन्दी भाषा सिखाने वाले शिक्षकों को तैयार करना चाहिए। ऐसे शिक्षकों की बड़ी ही कमी है। ऐसे एक शिक्षक प्रयाग से आपके लोकप्रिय मंत्री भाई पुरूषोत्तमदास जी टण्डन द्वारा मुझे मिले हैं।

हिन्दी भाषा का एक भी सम्पूर्ण व्याकरण मेरे देखने में नहीं आया। जो हैं सो अंग्रेजी में विलायती पादरियों के बनाये हुए हैं। ऐसा एक व्याकरण डॉ0 केलॉग का रचा हुआ है। हिन्दुस्तान की अन्यान्य भाषाओं का मुकाबला करने वाला व्याकरण हमारी भाषा में होना चाहिए। हिन्दी प्रेमी विद्वानों से मेरी नम्र विनती है कि वे इस त्रुटि को दूर करें। हमारी राष्ट्रीय सभाओं में हिन्दी भाषा का ही इस्तेमाल होना आवश्यक है। कांग्रेस के कार्यकर्ताओं और प्रतिनिधियों द्वारा यह प्रयत्न होना चाहिए। मेरा अभिप्राय है कि यह सभा ऐसी प्रार्थना आगामी कांग्रेस में उसके कर्मचारियों के सम्मुख उपस्थित करे।

हमारी कानूनी सभाओं में भी राष्ट्रीय भाषा द्वारा कार्य चलाना चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक प्रजा को राजनीतिक कार्यो में ठीक तालीम नहीं मिलती है। हमारे हिन्दी अखबार इस कार्य को थोड़ा सा करते तो हैं, लेकिन प्रजा को तालीम अनुवाद से नहीं मिल सकती है। हमारी अदालतों में जरूर राष्ट्रीय भाषा और प्रान्तीय भाषा का प्रचार होना चाहिए। न्यायधीशों की मारफत जो तालीम हमको सहज ही मिल सकती है उस तालीम से आज प्रजा वंचित रहती है।

भाषा की जैसी सेवा हमारे राजा महाराजा लोग कर सकते हैं, वैसी अंग्रेज सरकार नहीं कर सकती। महाराजा होल्कर की कौंसिल में, कचहरी में और हर एक काम में हिन्दी का और प्रान्तीय बोली का ही प्रयोग होना चाहिए। उनके उत्तेजन से भाषा और बहुत ही बढ़ सकती है। इस राज्य की पाठशालाओं में शुरू से आखिर तक सब तालीम मादरी जबान में देने का प्रयोग होना चाहिए। हमारे राजा महाराजाओं से भाषा की बड़ी भारी सेवा हो सकती है। मैं उम्मीद रखता हूँ कि होल्कर महाराज और उनके अधिकारी वर्ग इस महान कार्य को उत्साह से उठा लेंगे।

ऐसे सम्मेलन से हमारा सब कार्य सफल होगा, ऐसी समझ भ्रम ही है। जब हम प्रतिदिन इसी कार्य की धुन में लगे रहेंगे, तभी इस कार्य की सिद्धि हो सकेगी। सैकड़ों स्वार्थत्यागी विद्वान जब इस कार्य को अपनायेंगे तभी सिद्धि सम्भव है। मुझे खेद तो यह है कि जिन प्रान्तों की मातृभाषा हिन्दी है, वहाँ भी उस भाषा की उन्नति करने का उत्साह नहीं दिखाई देता है। उन प्रान्तों में हमारे शिक्षित वर्ग आपस में पत्र व्यवहार और बातचीत अंग्रेजी में करते हैं। एक भाई लिखते हैं कि हमारे अखबार चलाने वाले अपना व्यवहार अंग्रेजी की मारफत करते है। अपने हिसाब किताब वे अंग्रेजी में ही रखते हैं। फांस में रहने वाले अंग्रेज अपना सब व्यवहार अंग्रेजी में रखते हैं। हम अपने देश में अपने महत कार्य विदेशी भाषा में करते हैं। मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देते, तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं। इस सम्मेलन द्वारा भारतवर्ष के इस बड़े प्रश्न का निराकरण हो जाये, ऐसी आशा है और प्रभु के प्रति प्रार्थना है।

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय का भाषण

(4 फरवरी, 1916)

"अगर हमें स्वराज्य प्राप्त करना है, तो हमें इस प्यार करने वाली स्वतंत्रता को (ब्रिटिश साम्राज्य) अपनाना होगा और जो लोग खुद स्वतंत्रता में भाग नहीं लेना चाहते हैं, यह उन लोगों का आजादी दिलाने वाला समुदाय नहीं होगा।" फरवरी 1916 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के उद्घाटन के अवसर पर बोलने के लिए, पं मदन मोहन मालवीय ने

महात्मा गांधी को आमंत्रित किया था। वहाँ सभी उपस्थित लोग, महात्मा गांधी का भाषण सुनकर विचार–विमर्श करने पर मजबूर हो गए थे। शाही राजा और युवराजों, एनी बेसेंट और बाकी सभी, ब्रिटिश नेताओं के प्रति भारतीय नेताओं द्वारा अपनाने वाले विनीत भाषण की उम्मीद लगाकर आए थे। गांधी जी ने अंग्रेजी भाषा के जरिए भारी आलोचना और स्वराज्य की माँग के मुद्दे को प्रस्तुत करके दर्शकों को चौंका दिया था और महात्मा गांधी ने पहली बार बनारस में देश के स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व करने का संकेत प्रदर्शित किया था। ब्रिटिश शासन से भारत को आजाद कराने की आग को भड़काने वाला यह पहला भाषण था।

दांडी मार्च भाषण (11 मार्च 1930)

"हमने विशेष रूप से एक अहिंसात्मक संघर्ष की खोज में, अपने सभी संसाधनों का उपयोग करने का संकल्प किया है। क्रोध में कोई भी गलत निर्णय न लें।"

यह भाषण ऐतिहासिक दांडी नमक मार्च की पूर्व संध्या पर था, जिसमें कि महात्मा गांधी ने, असहयोग के लिए, एक अच्छी तरह से सोचे–समझे कार्यक्रम का उल्लेख किया था। उन्होंने अपने अनुयायियों के साथ समुद्र के पानी से नमक बनाने की स्थापना करते हुए ब्रिटिश भारतीयों से कहा कि अंग्रेजों द्वारा लगाए गए करों की अवहेलना करनी होगी। उन्होंने भारतीयों से विदेशी शराब और कपड़े, करों का विरोध करने और (ब्रिटिश) अदालतों व सरकारी कार्यालयों से दूरी बनाकर रहने को कहा। इस भाषण ने न केवल भारतीयों को स्वतंत्रता संग्राम में शामिल होने और औपनिवेशिक शासन को चुनौती देने पर मजबूर किया, बल्कि साथ ही कई दशकों के बाद अमेरिका के नागरिक अधिकार आंदोलन को भी प्रभावित किया। भारतीयों का मानना है कि इस भाषण ने "सत्याग्रह" के प्रारम्भ होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

गोलमेज सम्मेलन भाषण (30 नवंबर 1931)

"मैं यह कहने की हिम्मत करता हूँ कि भारत में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच यह संघर्ष ब्रिटिश आगमन की एकजुटता का कारण है और तुरंत इस संबंध को ग्रेट ब्रिटेन और भारत के बीच दुर्भाग्यपूर्ण, कृत्रिम व अप्राकृतिक संबंधों से प्राकृतिक संबंधो में परिणत कर दिया जाता है। अगर ऐसा होता है तो स्वैच्छिक साझेदारी को छोड़ दिया जाए, अगर दोनों में से एक भी पार्टी भंग हो जाती है तो आपको प्रतीत होगा कि हिन्दू, मुसलमान, सिख, यूरोपीय, एंग्लो इंडियन, ईसाई, अछूत, सभी एक साथ एकजुटता से रहते हैं।" गांधी जी ने अपने पहले गोलमेज सम्मेलन में यही भाषण दिया था। इस भाषण में यह बताया गया है कि अंग्रेजों ने सांप्रदायिक असंतोष और झगड़े का हवाला देते हुए भारतीय राजनेताओं को अधिराज्य की स्थिति स्वीकार कराने का प्रयास किया। साहसिक महात्मा गांधी ने स्पष्ट रूप से झांसेबाज अंग्रेजों को चुनौती दी और भारत की एकता और धर्मनिरपेक्ष भावना का प्रदर्शन किया। उन्होंने कहा कि हमारे देश का इतिहास अंग्रेज इतिहासकारों द्वारा बदल दिया गया है लेकिन एक बार फिर हम प्यार और भाईचारे की एकता का गीत गाएंगे।

'भारत छोड़ो' भाषण (8 अगस्त 1942)

"मेरा मानना है कि दुनियाभर के इतिहास में, स्वतंत्रता के लिए हमारे वास्तविकता से ज्यादा यथार्थवादी लोकतांत्रिक संघर्ष नहीं रहा है। स्मिथसोनियन, इस संबोधन को "भारत को आजादी के कगार पर लाने वाले भाषण" के रूप में संदर्भित करता है। ऐतिहासिक भारत छोड़ो आंदोलन की पूर्व संध्या पर गांधी जी के संबोधन में अहिंसा और हमारी आजादी के आदर्शों को शामिल किया गया। महात्मा गांधी ने अंग्रेजों को स्वेच्छा से भारत छोड़ने के लिए काफी प्रयास किए और लाखों भारतीयों को बंधन और गुलामी से स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए प्रेरित भी किया। उनको अपने दृष्टिकोण की नवीनता और अहिंसात्मक ढंग का उपयोग करने वाले दुनिया के सबसे बड़े नेताओं में से एक के रूप में जाना जाता है।

उनके अंतिम उपवास से पहले का भाषण (12 जनवरी 1948) दृष्टव्य है "मेरी यह अभिलाषा है कि सभी हिंदू, सिख और मुसलमान अपने दिल में भाईचारे की भावना बनाएं। वह उसके बाद हमेशा तक जीवित रहे। आज यह अस्तित्वहीन हैं। यह एक ऐसा राज्य है जहाँ कोई भारतीय देशभक्त नाम के योग्य नहीं है, जो समता के साथ विचार कर सकता हो।" भारत को आजादी तो मिली, लेकिन इसके साथ ही देश को भारी कीमत भी चुकानी पड़ी थी। सैकड़ों वर्षों बाद एक

एकता का जन्म हुआ था, लेकिन एक दर्दनाक और हिंसक विभाजन ने सांप्रदायिक एकता को तार–तार कर दिया था। दुखी महात्मा गांधी ने एक बार फिर हमारे प्यारे देश की खातिर एक और सहन, एक और अहिंसक संघर्ष, एक और बलिदान और सभी भारतीयों की भलाई के लिए उपवास किया। उनकी मृत्यु के दिनों में उनका यह भाषण कि 'हमारा धर्म भारत को शांतिपूर्ण और अधिक सहनशील बनाता है' प्रेरणा का स्त्रोत होना चाहिए।

साबरमती के संत

कवि प्रदीप

दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल
आंधी में भी जलती रही गांधी तेरी मशाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।।

धरती पे लड़ी तूने अजब ढंग की लड़ाई
दागी न कहीं तोप न बंदूक चलाई
दुश्मन के किले पर भी न की तूने चढ़ाई
वाह! रे फकीर खूब करामात दिखाई
चुटकी में दुश्मनों को दिया देश से निकाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।।

शतरंज बिछा कर यहाँ बैठा था जमाना
लगता था मुश्किल है फिरंगी को हराना
टक्कर थी बड़े जोर की दुश्मन भी था ताना
पर तू भी था बापू बड़ा उस्ताद पुराना
मारा वो कसके दांव के उल्टी सभी की चाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।।

गांधी

हरिवंशराय बच्चन

एक दिन इतिहास पूछेगा
कि तुमने जन्म गांधी को दिया था,
जिस समय हिंसा,
कुटिल विज्ञान बल से हो समन्वित,
धर्म, संस्कृति, सभ्यता पर डाल पर्दा,
विश्व के संहार का षडयंत्र रचने में लगी थी,
तुम कहां थे ? और तुमन क्या किया था!
एक दिन इतिहास पूछेगा
कि तुमने जन्म गांधी को दिया था,
जिस समय अन्याय ने पशु-बल सुरा पी-
उग्र, उद्धत, दंभ-उन्मद-
एक निर्बल, निरपराध, निरीह को
था कुचल डाला।
तुम कहां थे ? और तुमने क्या किया था ?

बापू के प्रति

सुमित्रानंदन पंत

तुम मांस-हीन, तुम रक्तहीन,
हे अस्थि-शेष! तुम अस्थिहीन,
तुम शुद्ध-बुद्ध आत्मा केवल,
हे चिर पुराण, हे चिर नवीन!
तुम पूर्ण इकाई जीवन की,
जिसमें असार भव-शून्य लीन,
आधार अमर, होगी जिस पर
भावी की संस्कृति समासीन!
तुम मांस, तुम्ही हो रक्त-अस्थि,
निर्मित जिनसे नवयुग का तन,
तुम धन्य! तुम्हारा निःस्व-त्याग
है विश्व-भोग का वर साधन!
इस भस्म-काम तन की रज से
जग पूर्ण-काम नव जग-जीवन
बीनेगा सत्य-अहिंसा के
ताने-बानों से मानवपन!

बापू

रामधारी सिंह 'दिनकर'

संसार पूजता जिन्हें तिलक,
रोली, फूलों के हारों से,
मैं उन्हें पूजता आया हूँ
बापू! अब तक अंगारों से।
अंगार, विभूषण यह उनका
विद्युत पीकर जो आते हैं,
ऊंघती शिखाओं की लौ में
चेतना नयी भर जाते हैं।
उनका किरीट, जो कुहा-भंग
करके प्रचण्ड हुंकारों से,
रोशनी छिटकती है जग में
जिनके शोणित की धारों से।
झेलते वह्नि के वारों को
जो तेजस्वी बन वह्नि प्रखर,
सहते ही नहीं, दिया करते
विष का प्रचण्ड विष से उत्तर।
अंगार हार उनका, जिनकी
सुन हांक समय रुक जाता है,
आदेश जिधर का देते हैं,
इतिहास उधर झुक जाता है।

'हिंद स्वराज' की अवधारणा को लेकर गांधी का पत्र जवाहरलाल नेहरू के नाम

चि. जवाहर लाल

तुमको लिखने का तो कई दिनों से इरादा था, लेकिन आज ही उस पर अमल कर सकता हूं। अंग्रेजी में लिखूं या हिंदुस्तानी में, वह भी मेरे सामने सवाल था। आखिर में मैंने हिन्दुस्तानी में ही लिखना पसंद किया।

पहली बात तो हमारे बीच में जो बड़ा मतभेद हुआ है, उसकी है। अगर ये भेद सचमुच है तो लोगों को भी जानना चाहिए, क्योंकि उनको अंधरे में रखने से हमारा स्वराज का काम रूकता है। मैंने कहा कि हिंद स्वराज में मैंने लिखा है, उस राज्य पद्धति पर मैं बिलकुल कायम हूं। यह सिर्फ कहने की बात नहीं है। लेकिन जो अनुभव से आज तक पाया है। आखिर में मैं एक ही उसे मानने वाला रह जाऊँ, उसका मुझको जरा भी दुख नहीं होगा, क्योंकि मैं जैसा सत्य पाता हूं, उसका मैं साक्षी बन सकता हूं। अच्छा है कि मैं उसी चित्र को आज अपनी भाषा में खींचू। पीछे वह चित्र 1908 जैसा है या नहीं, उसकी मुझे दरकार न रहेगी, न तुम्हें रहनी चाहिए। आखिर में तो मैंने पहले क्या कहा था, उसे सिद्ध करना नहीं है। आज मैं क्या कहना चाहता हूं, वही जानना आवश्यक है। मैं यह जानता हूँ कि अगर हिंदुस्तान को सच्ची आजादी पानी है तो हिंदुस्तान के मार्फत दुनिया को भी आज नहीं, तो कल देहातों में ही रहना होगा, झोपड़ियों में, महलों में नहीं। कई अरब आदमी शहरों में और महलों में खून करके, मायने हिंसा, न झूठ से यानी असत्य से। इस जोड़ी के यानी सत्य और अहिंसा मनुष्य जाति का नाश ही है, उसमें मुझे जरा भी शक नहीं है। उस सत्य और अहिंसा का दर्शन हम देहातों की सादगी में ही कर सकते हैं। वह सादगी चरखा में और चरखा में जो चीज भरी है, उसी पर निर्भर है। मुझे कोई डर नहीं है कि दुनिया उल्टी ओर जा रही दिखती है। यो तो पतंगा जब अपने नाश की ओर जाता है तब सबसे ज्यादा चक्कर लगाता है। चक्कर खाते खाते जल जाता है। हो सकता है कि बसर नहीं करेगा, मर्द और औरत दोनों आजादी से रहते और सारे जगत के साथ मुकाबला करने को तैयार रहेंगे। वहां न तो हैजा होगा, न मिर्गी होगी, न चेचक होगा। कोई आलस्य में रह नहीं सकता हैं, न कोई ऐशो आराम में रहेगा। सबको शारीरिक मेहनत करनी होगी। इतनी चीज होते हुए मैं ऐसी बहुत सी चीज का ख्याल रख सकता हूं जो बड़े पैमाने पर बनेंगी। शायद रेलवे भी होगा, डाकघर भी होंगे। क्या होगा, क्या नहीं, उसका मुझे पता नहीं। न मुझको उसकी फिकर है। असली बात को मैं कायम कर सकूं तो बाकी आने की और रहने की खूबी रहेगी और असली बात छोड दूं तो सब छोड़ सकता हूं।

उस दिन हम वर्किंग कमिटी में बैठे थे, तो ऐसा कुछ फैसला हुआ था कि इसी चीज को साफ करने के लिए वर्किंग कमिटी 2-3 दिन के लिए बैठेगी। बैठेगी तो मुझे अच्छा लगेगा। लेकिन न बैठे तो भी मैं चाहता हूं कि हम दोनों एक दूसरे को अच्छी तरह समझ लें। उसके दो सबब हैं। हमारा संबंध सिर्फ राजकरण का ही नहीं है। उससे कई दर्जा गहरा है। उस गहरे का मेरे पास कोई नाम नहीं है। वह संबंध टूट भी नहीं सकता। इसलिए मैं चाहूंगा हम एक दूसरे को राजकरण में भी भली-भाँति समझे। दूसरा कारण यह है कि हम दोनों हिंदुस्तान की आजादी के लिए ही जिंदा रहते हैं और उसी आजादी के लिए हमको मरना भी अच्छा लगेगा। हमें किसी की तारीफ की दरकार नहीं है। तारीफ हो या गालियां एक ही चीज है। खिदमत में उसे कोई डिगा ही नहीं सकता। अगरचे मैं 125 वर्ष तक सेवा करते-करते जिंदा रहने की इच्छा करता हूं, तब भी मैं आखिर में बूढ़ा हूं और तुम मुकाबले में जवान हो। इसी कारण मैंने कहा है कि मेरे वारस तुम हो। कम से कम उस वारस को मैं समझ तो लूं। और मैं क्या हूं वह भी वारस समझ ले तो अच्छा ही है और मुझे चैन रहेगा।

गांधी के चित्र को देखकर

केदारनाथ अग्रवाल

दुःख से दूर पहुँच कर गांधी
सुख से मौन खड़े हो
मरते-खपते इंसानों के
इस भारत में तुम्हीं बड़े हो
जीकर जीवन को अब जीना
नहीं सुलभ है हम को
मर कर जीवन को फिर जीना
सहज सुलभ है तुम को।।

राष्ट्रभाषा का प्रश्न

(गांधी जी और टण्डन जी का पत्र व्यवहार)

2 महाबलेश्वर 28-05-45

भाई टण्डन जी,

मेरे पास उर्दू खत आते हैं, हिन्दी आते हैं और गुजराती। सब पूछते हैं, मैं कैसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन में रह सकता हूँ और हिन्दुस्तानी सभाओं में भी? वे कहते हैं, सम्मेलन की दृष्टि से हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है, जिसमें नागरी लिपि को ही राष्ट्रीय स्थान दिया जाता है, जब कि मेरी दृष्टि में नागरी और उर्दू लिपि को यह स्थान दिया जाता है और उस भाषा को जो न फारसीमयी है, न संस्कृतमयी। जब मैं सम्मेलन की भाषा और नागरी लिपि को पूरा राष्ट्रीय स्थान नहीं देता हूँ, तब मुझे सम्मेलन में से हट जाना चाहिए। ऐसी दलील मुझे योग्य लगती है। इस हालत में क्या सम्मेलन से हटना मेरा फर्ज नहीं होता है ? ऐसा करने से लोगों को दुविधा न रहेगी, और मुझे पता चलेगा कि मैं कहाँ हूँ ?

कृपया, शीघ्र उत्तर दें। मौन के कारण लिखा है। लेकिन मेरे अक्षर पढ़ने में सबको मुसीबत होती है, इसलिए इसे लिखवाकर भेजता हूँ। आप अच्छे होंगे।

आपका

मो.क. गाँधी

10, क्रास्थवेट रोड, इलाहाबाद 8-6-45

पूज्य बापू जी, प्रणाम,

आपका 28 मई का पत्र मुझे मिला। हिन्दी साहित्य सम्मेलन और हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के कामों में कोई मौलिक विरोध मेरे विचार में नहीं है। आपको स्वयं हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सदस्य रहते हुए लगभग 27 वर्ष हो गये। इस बीच आपने हिन्दी-प्रचार का काम राष्ट्रीयता की दृष्टि से किया। वह सब काम गलत था, ऐसा तो आप नहीं मानते होंगे। राष्ट्रीय दृष्टि से हिन्दी का प्रचार वांछनीय है, यह तो आपका सिद्धान्त है ही। आपके नये दृष्टिकोण के अनुसार उर्दू-शिक्षण का भी प्रचार होना चाहिए। यह पहले काम से भिन्न एक नया काम है, जिसका पहले काम से कोई विरोध नहीं है।

सम्मेलन हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानता है। उर्दू को वह हिन्दी की एक शैली मानता है, जो विशिष्ट जनों में प्रचलित है।

वह स्वयं हिन्दी की साधारण शैली का काम करता है, उर्दू शैली का नहीं। आप हिन्दी के साथ उर्दू को भी चलाते हैं। सम्मेलन उसका तनिक भी विरोध नहीं करता। किन्तु राष्ट्रीय कामों में अंग्रेजी को हटाने में वह उसकी सहायता का स्वागत करता है। भेद केवल इतना है कि आप दोनों चलाना चाहते हैं। सम्मेलन आरम्भ से केवल हिन्दी चलाता आया है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सदस्यों को हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के सदस्य होने में रोक नहीं है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से निर्वाचित प्रतिनिधि हिन्दुस्तानी एकेडेमी के सदस्य हैं, और हिन्दुस्तानी एकेडेमी हिन्दी और उर्दू दोनों शैलियाँ और लिपियाँ चलाती है। इस दृष्टि से मेरा निवेदन है कि मुझे इस बात का कोई अवसर नहीं लगता कि आप सम्मेलन छोड़ें।

एक बात इस सम्बन्ध में और भी है। यदि आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अब तक सदस्य न होते, तो सम्भवतः आपके लिए यह ठीक होता कि आप हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का काम करते हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन में आने की आवश्यकता न देखते। परन्तु जब आप इतने समय से सम्मेलन में हैं, तब उसे छोड़ना उसी दशा में उचित हो सकता है, जब निश्चित रीति से उसका काम आपके नये कामों के प्रतिकूल हो। यदि आपने अपने पहले काम को रखते हुए उसमें एक शाखा बढ़ाई है, तो विरोध की कोई बात नहीं है।

मुझे जो बात उचित लगी, ऊपर निवेदन की। किन्तु यदि आप मेरे दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं, और आपकी आत्मा यही कहती है कि सम्मेलन से अलग हो जाऊँ, तो आपके अलग होने की बात पर बहुत दुख होते भी नतमस्तक हो आपके निर्णय को स्वीकार करूँगा।

हाल में हिन्दी और उर्दू के विषय में एक वक्तव्य मैंने दिया था उसकी एक प्रतिलिपि सेवा में भेजता हूँ। निवेदन है कि उसे पढ़ लीजियेगा।

विनीत

पुरूषोत्तमदास टण्डन

पुनः इस समय न केवल आप किन्तु हिन्दुस्तानी-प्रचार सभा के मंत्री श्रीमत्रारायण जी तथा कई अन्य सदस्य सम्मेलन की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सदस्य हैं। एक स्पष्ट लाभ इससे यह है कि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति और हिन्दुस्तानी-प्रचार सभा के कामों में विरोध न हो सकेगा। कुछ मतभेद होते हुए भी साथ काम करना हमारे नियंत्रण का अंश होना उचित है।

पुरूषोत्तमदास टण्डन

भाई टण्डन जी, सेवाग्राम 15-07-45

आपका तारीख 11-7-45 का पत्र मिला। मैंने दो बार पढ़ा। बाद में भाई किशोरीलाल को दिया, वे स्वतंत्र विचारक हैं, आप जानते होंगे। उन्होंने लिखा है, सो भी भेजता हूँ। मैं तो इतना ही कहूँगा कि जहाँ तक हो सका मैं आपके प्रेम के अधीन रहा हूँ। अब समय आया है कि वही प्रेम मुझे आपसे वियोग करायेगा। मैं अपनी बात नहीं समझा सका हूँ। यही पत्र आप सम्मेलन की स्थायी समिति के सामने रखें। मेरा ख्याल है कि सम्मेलन ने हिन्दी की मेरी व्याख्या अपनाई नहीं है। अब तो मेरे विचार इसी दिशा में आगे बढ़े हैं। राष्ट्रभाषा की मेरी व्याख्या में हिन्दी और उर्दू लिपि और दोनों शैली का ज्ञान आता है। ऐसा होने से ही दोनों का समन्वय होने का है, तो हो जायेगा। मुझे डर है कि मेरी यह बात सम्मेलन को चुभेगी। इसलिए मेरा इस्तीफा कबूल किया जाये। हिन्दुस्तानी प्रचार का कठिन काम करते हुए मैं हिन्दी की सेवा करूँगा और उर्दू की भी।

आपका

मो.क. गाँधी

हिन्द स्वराज : दो सवाल

• सुधीर चन्द्र

(प्रसिद्ध इतिहासकार सुधीर चंद्र की महत्वपूर्ण पुस्तकें - द अप्रेसिव प्रेजेण्टः लिट्रेचर एंड सोशल कॉनशस इन कोलोनियल इंडिया (ओयूपी,1992), इनस्लेव डॉटर्स : कोलोनियलिज्म लॉ एंड विमैन्स राइट्स (ओयूपी, 1988) तथा कन्टिन्न यूइंग डिलिमाः अण्डरट्रेंनिग सोशल कॉनशल (तूलिका, 2002) आदि शामिल हैं। फिलहाल ईसाइयत में धर्मान्तरण पर काम कर रहे हैं, साथ ही गांधी के अंतिम दिनों पर भी एक नयी किताब लगभग आने को है।)

'हिन्द स्वराज' 1909 में लिखा गया। कुल दस दिनों में, जहाज की यात्रा के दौरान। 'हाल' जैसी स्थिति में। दाहिना हाथ थक जाये लिखते लिखते तो बायां लिखने लगता था। कह सकते हैं कि 'हिन्द स्वराज' ने लिखवा लिया अपने आप को मोहनदास करमचंद गांधी से।

नवम्बर 1909 के उन दस दिनों में गांधी पर तारी हुआ वह 'हाल' तो चला गया, पर 'हिन्द स्वराज' में गांधी का विश्वास आखिर तक टिका रहा। जब भी मौका आया वह कहते रहे कि 'हिन्द स्वराज' में उन्होंने जो कुछ भी कहा है उससे वह जरा भी हिले नहीं हैं। बल्कि वक्त के साथ उन विचारों में उनका विश्वास और पक्का ही हुआ है।

'हिन्द स्वराज' लिखने के कम से कम 15 साल पहले से, जब वह सिर्फ 25 साल के युवक थे गांधी अपने उस बीज पाठ में व्यक्त होने वाले विचारों के हामी हो गये थे। उसी वक्त से वह बड़े आत्मविश्वास के साथ आधुनिक सभ्यता की सतही चकाचौंध की बात करने लगे थे, एक ऐसी सभ्यता जिसका पदार्थ प्रेम किसी तरह की आत्मिक शांति नहीं दे सकता था, और जिसका जीवन के शाश्वत मूल्यों से कोई लेना देना नहीं था।

'हिन्द स्वराज' लिखने के छः साल बाद ही गांधी दक्षिण अफ्रीका को अलविदा कह कर हिन्दुस्तान आ गये। केवल चार वर्षो में वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के शिखर के नेता बन गये।

1920-22 के असहयोग आंदोलन के तो सूत्रधार ही थे वह। चौरी-चौरा कांड के बाद असहयोग आंदोलन वापस लेने के कारण कांग्रेस में उनकी बड़ी कटु आलोचना हुई और दूसरी तरफ अंग्रजी सरकार ने उन्हें जेल भी भेज दिया। अगले छः सालों तक राष्ट्रीय आंदोलन और उससे जुड़ी राजनीति में गांधी और उनकी नीतियों का निष्कासन सा रहा।

1928 में साइमन आयोग की वजह से उबल पड़े आक्रोश और अगले ही साल पूर्ण स्वराज के कांग्रेसी प्रस्ताव से उत्पन्न संघर्ष की स्थिति से एक बार फिर गांधी का जादू चलने लगा नमक और सविनय अवज्ञा आंदोलन के रूप में।

सविनय अवज्ञा आंदोलन और द्वितीय गोल मेज परिषद के बाद एक बार फिर गांधी का वैसा ही हश्र हुआ जैसा चौरी चौरा के बाद हुआ था और भारत छोड़ो आन्दोलन के शुरू होने तक वही स्थिति बनी रही। मतलब यह कि 32 साल तक कांग्रेस और राष्ट्रीय आंदोलन के साथ रहे अपने सम्बंध के दौरान गांधी निरंतर उठते गिरते रहे। आज सर्वेसर्वा,कल अलग थलग।

तीन सशक्त राष्ट्रीय संघर्षो असहयोग, सविनय अवज्ञा, और भारत छोड़ो के अधिनायकत्व के सालों में भी कभी गांधी ने कोई औपचारिक प्रस्ताव नहीं रखा 'हिन्द स्वराज' में व्यक्त विचारों को कांग्रेस की आर्थिक सामाजिक नीति बनाने का। जबकि जवाहरलाल नेहरू, दूसरे समाजवादी प्रवृत्ति के नेता बराबर कोशिश करते रहे, कमोवेश कामयाबी के साथ, कांग्रेस की घोषित नीतियों को समाजवादी की दिशा में ले जाने की। और इस सारे वक्त गांधी मानते रहे 'हिन्द स्वराज' वाली जीवन प्रणाली को। फिर भी केवल अब्टूबर 1945 में - 'हिन्द स्वराज' लिखने के 36 और दक्षिण अफ्रीका से वापसी के 20 साल बाद कहीं जाकर उन्होंने पहली कोशिश की सभ्यता सम्बंधी अपने विचारों को नये आजाद हिन्दुस्तान के निर्माण का आधार बनाने की। यह कहानी अब तक काफी लोग जान गये हैं। मैंने भी अत्यंत विस्तार से इसकी चर्चा की है। पर जो दो सवाल मैं उठाना चाह रहा हूं 'हिन्द स्वराज' के सम्बंध में, वह इस तरह से जुड़े हुए हैं इस कहानी से कि इसे फिर से याद किये बगैर बात आगे बढ़ नहीं पायेगी।

कहानी की पृष्ठभूमि यह है कि द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका है, हिन्दुस्तान की आजादी निश्चित है, और गांधी के राजनैतिक वारिस जवाहरलाल नेहरू स्वतंत्र हिन्दुस्तान के प्रधानमंत्री बनने वाले हैं। गांधी को लगता है कि यही समय है अपने वारिस और भावी प्रधानमंत्री से नये भारत के प्रारुप की बात छेड़ने का । इसलिए खासतौर से उन दोनों के बीच में भविष्य के भारत को

लेकर मतभेद होता नजर आ रहा था। सो 5 अक्टूबर 1945 को गांधी ने एक लम्बा पत्र नेहरू को भेजा। पत्र महत्वपूर्ण है और गौर से पढ़े जाने की मांग करता है। अतएव उसका 'हिन्द स्वराज' औपचारिक आजादी पाने के बाद आने या न आने वाले स्वराज वाला हिस्सा यहां उसी तरह उद्धत है जैसे कि मूल में है-

चि0 जवाहरलाल,

तुमको लिखने का तो कई दिनों से इरादा किया था, लेकिन आज ही उसका अमल कर सका हूँ। अंग्रेजी में लिखूं या हिन्दुस्तानी में यह भी मेरे सामने सवाल रहा था। आखिर में मैंने हिन्दुस्तानी में ही लिखना पसंद किया।

पहली बात तो हमारे बीच में जो बड़ा मतभेद हुआ है उसकी। अगर वह भेद सचमुच है तो लोगों को भी जानना चाहिए। क्योंकि उनको अंधेरे में रखने से हमारा स्वराज का काम रूकता है। मैंने कहा है कि 'हिन्द स्वराज' में मैंने लिखा है उस राज्य पद्धति पर मैं बिल्कुल कायम हूं। यह सिर्फ कहने की बात नहीं हैं, लेकिन जो चीज मैंने 1908 (यही) साल में लिखी है उसी चीज का सत्य मैंने अनुभव से आज तक पाया है। आखिर में मैं एक ही उसे मानने वाला रह जाऊं उसका मुझको जरा सा भी दुःख न होगा क्योंकि मैं जैसे सत्य पाता हूं उसका मैं साक्षी बन सकता हूं। 'हिन्द स्वराज' मेरे सामने नहीं है। अच्छा है कि मैं उसी चित्र को आज अपनी भाषा में खैचूं। पीछे यह चित्र 1908 जैसा ही है या नहीं उसकी मुझे दरकार न रहेगी, न तुम्हें रहनी चाहिए। आखिर में तो मैंने पहले क्या कहा था उसे सिद्ध करना नहीं है, कि अगर हिन्दुस्तान को सच्ची आजादी पानी है और हिन्दुस्तान के मारफत दुनिया को भी तब आज नहीं तो कल देहातों में ही रहना होगा - झोपड़ियों में, महलों में नहीं। कई अरब आदमी शहरों में और महलों में सुख से और शांति से कभी रह नहीं सकते, न एक दूसरों का खून करके मायने हिंसा से, न झूठ से- यानी असत्य से। सिवाय इस जोड़ी के (यानी सत्य और अहिंसा) मनुष्य जाति का नाश ही है उसमें जरा सा भी शक नहीं है। उस सत्य और अहिंसा का दर्शन हम देहातों की सादगी में ही कर सकते हैं। यह सादगी चर्खा में और चर्खा में जो चीज भरी है उसी पर निर्भर है। मुझे कोई डर नहीं है कि दुनिया उल्टी ओर ही जा रही दिखती है। यों तो पतंगा जब अपने नाश की ओर जाता है तब सबसे ज्यादा चक्कर खाता है और चक्कर खाते खाते जल जाता है। हो सकता है कि हिन्दोस्तान इस पतंगे के चक्कर में से न बच सके। मेरा फर्ज है कि आखिर दम तक उसमें से उसे और उसके मारफत जगत को बचाने की कोशिश करूं। मेरे कहने का निचोड़ यह है कि मनुष्य जीवन के लिए जितनी जरूरत की चीज है उस पर निजी काबू होना चाहिए-अगर न रहे तो व्यक्ति बच ही नहीं सकता है। आखिर तो जगत व्यक्तियों का ही बना है। बिन्दु नहीं है तो समुद्र नहीं है। यह तो मैंने मोटी बात ही कही कोई नयी बात नहीं की।

लेकिन 'हिन्द स्वराज' में भी मैंने यह बात नहीं की है। आधुनिक शास्त्र की कदर करते हुए पुरानी बात को मैं आधुनिक शास्त्र की निगाह से देखता हूं तो पुरानी बात इस नये लेबाश में मुझे बहुत मीठी लगती है। अगर ऐसा समझोगे कि मै आज की देहातों की बात करता हूं तो मेरी बात नहीं समझोगे। मेरा देहात आज मेरी कल्पना में ही है। आखिर में तो हर एक मनुष्य अपनी कल्पना की दुनिया में ही रहता है। इस काल्पनिक देहात में देहाती जड़ नहीं होगा शुद्ध चैतन्य होगा। वह गंदगी में, अंधेरे कमरे में जानवर की जिन्दगी बसर नहीं करेगा, मर्द और औरत दोनों आजादी से रहेंगे और सारे जगत के साथ मुकाबला करने को तैयार रहेंगे। यहां न हैजा होगा, न भरकी होगी न चेचक होंगे। कोई आलस में रह नहीं सकता है, न कोई ऐश आराम में रहेगा। सबको शारीरिक मेहनत करनी होगी। इतनी चीज होते हुए मैं ऐसी बहुत सी चीज का ख्याल कर सकता हूं जो बड़े पैमाने पर बनेगी। शायद रेलवे भी होगी, डाकघर, तारघर भी होंगे। क्या होगा, क्या नहीं उसका मुझे पता नहीं। न मुझको उसकी फिकर है। असल बात को मैं कायम कर सकूं तो आने की और रहने की खूबी रहेगी। और असली बात को छोड़ दूं तो सब छोड़ देता हूं।

उस रोज जब हम आखिर में वर्किंग कमेटी में बैठे थे तो ऐसा कुछ 'फैसला हुआ था कि इसी चीज को साफ करने के लिए वर्किंग कमेटी 2-3 दिन के लिए बैठेगी। बैठेगी तो मुझे अच्छा लगेगा, लेकिन न बैठे तब भी मैं चाहता हूं कि हम दोनों एक दूसरे को अच्छी तरह समझ लें। उसके दो सबब है। हमारा सम्बंध सिर्फ राजकारण का ही नहीं है। वह संबंध टूट भी नहीं सकता इसलिये मै चाहूंगा कि हम एक दूसरे के राजकारण में भी भलीभांति समझें। दूसरा कारण यह है कि हम दोनों में से एक भी अपने को निकम्मा नहीं समझते हैं। हम दोनों हिन्दुस्तान की आजादी के लिए ही जिन्दा रहते हैं और उसी आजादी के लिए हमको मरना भी अच्छा लगेगा। हमें किसी की तारीफ की दरकार नहीं है। तारीफ हो या गालियां-एक ही चीज है। खिदमत में उसे कोई जगा ही नहीं है। अगर मैं 125 वर्ष तक सेवा करते करते जिन्दा रहने की इच्छा

करता हूँ तब भी मैं आखिर में बूढ़ा हूं और तुम्हारे मुकाबले में जवान हो इसी कारण मैंने कहा है कि मेरे वारिस तुम हो। कम से कम उस वारिस को मैं समझ लूं और मैं क्या हूं वह भी वारिस समझ ले तो अच्छा ही है, और मुझे चैन रहेगा। इसके बाद कुछ दीगर बातें आती हैं, और पत्र इस तरह समाप्त होता है। इस सबके बारे में अगर हमें मिलना ही चाहिए तो हमारे मिलने का वक्त निकालना चाहिए। तुम बहुत काम कर रहे हो। स्वास्थ्य अच्छा रहता होगा। इंदु ठीक होगी। बापू के आशीर्वाद ''।

इस कहानी को एक पल के लिए यहां रोक कर मैं 'हिन्द स्वराज' के सम्बंध में जो दो सवाल मुझे महत्वपूर्ण लगते है उनमें से पहला उठाना चाहता हूं। गांधी ने जो कोशिश 1945 में की वह इतनी देर से क्यों की? आधुनिक औद्योगिक सभ्यता को सिरे से संहारकारी, और 'हिन्द स्वराज' में वर्णित विकल्प को मानव जाति को सामूहिक आत्मघात से बचाने के लिए अनिवार्य मानते हुए भी पूरे 35 साल तक उन्होंने इस मामले में कोई कारगर कदम नहीं उठाया। असहयोग आंदोलन के दौरान तो उन्होंने साफ-साफ कह भी दिया कि यद्यपि 'हिन्द स्वराज' में उन्होंने जीवन का एक पूरा दर्शन दिया है, सामूहिक स्तर पर वह उस दर्शन के केवल उस हिस्से को अमल में लाने का प्रयास कर रहे हैं जो अहिंसा से सम्बंधित है।

गांधी 'हिन्द स्वराज' लिखते समय अच्छी तरह समझ रहे थे कि जिस विकल्प की वह बात कर रहे हैं वह उस संवेदना से नितांत भिन्न है जो, आधुनिक युग में पश्चिम से निकल कर पूरे विश्व में छा गयी है। इसीलिए उन्होंने 'हिन्द स्वराज' में ही कह दिया था कि उन्हें कतई कोई खुशफहमी नहीं थी कि लोग उनके विचार जल्दी मान लेंगे। पर उन्हें यकीन था कि धीरे-धीरे, उनके तरीकों और विचारों को व्यावहारिक जीवन में कामयाब होते देख, 'हिन्द स्वराज' की विश्वसनीयता बढ़ेगी। उनको उम्मीद इसलिए भी बंधती थी कि वह मानते थे कि न केवल भारत बल्कि पूरे पूरब में लोग पश्चिमी सभ्यता का फल पान को लालायित तो हो सकते हैं पर बिना अपराधबोध के नहीं।

1945 तक गांधी जितना काम कर चुके थे देश में, जो लोकप्रियता हासिल कर चुके थे, और दिखा चुके थे कि उनके सिद्धांत किसी सनकी या शेखचिल्ली की बातें भर नही थे, वजह होती थी उनके सोचने की कि शायद लोग 'हिन्द स्वराज' को स्वीकार करने की मनः स्थिति में आ गये हों।

इसके ही साथ - साथ एक और कारण रहा हो सकता है गांधी के 'हिन्द स्वराज' को इतने लम्बे अरसे तक अलग रखने का। उनका मानना था कि जब तक आजादी की लड़ाई चल रही है ऐसे मसलों को भरसक, औपचारिक स्तर पर, कांग्रेस और राष्ट्रीय आंदोलन के बाहर ही रखा जाय जिनके कारण भारतीय समाज के विभिन्न वर्ग एकजुट हो संघर्ष करने के बजाय परस्पर फूट के शिकार हो जायें। मसलन जब 1928 में नेहरू ने जोर दिया कि गरीबों का शोषण करने वाले निहित स्वार्थो के खिलाफ मुहिम छेड़ देनी चाहिए, गांधी का उत्तर था। ''मैं तुमसे सहमत हूं कि हमें किसी दिन अमीरों और शिक्षितों को अलग कर एक जोरदार आंदोलन शुरू करना होगा। पर अभी नहीं ''।

जैसे ही देश की आजादी सुनिश्चित हो गयी, गांधी ने भावी प्रधानमंत्री के साथ, और कांग्रेस की वर्किंग कमेटी में, 'हिन्द स्वराज' की बात शुरू कर दी।

नेहरू बहुत ही व्यस्त थे जब 'आनंद भवन, इलाहाबाद, में उनको गांधी का 5 अक्टूबर वाला पत्र मिला। वह एक दौरे से लौटे थे और दूसरे पर जाने वाले थे। फिर भी, यह कहते हुए कि बाद में फिर वह एक विस्तृत उत्तर भेजेंगे, नेहरू ने 9 अक्टूबर को एक खासा लम्बा और झुंझलाइट भरा पत्र गांधी को भेजा। पत्र अंग्रेजी में था। पत्र के शुरू में अपनी व्यस्तता का जिक्र कर, और इस मसले पर अनौपचारिक बातचीत की जरूरत मान यह लिखते हुए कि 'फिलहाल मैं नही जानता कि कब यह हो सकेगा। मैं कोशिश करूंगा ', 'नेहरू ने कहा : 'संक्षेप में मेरा मत यह है कि हमारे सामने सवाल सत्य बनाम असत्य या अहिंसा बनाम हिंसा का नहीं है। हम मानते है कि वास्तविक सहयोग और शांतिपूर्ण तरीके हमारे उद्देश्य हैं और हमारा लक्ष्य है इनको बढ़ावा देने वाला समाज। सारा सवाल तो यह है कि ऐसा समाज हासिल कैसे किया जाय और इस समाज के तत्व क्या हों। मैं नहीं समझता कि क्यों कोई भी गांव अनिवार्यता सत्य और अहिंसा की प्रतिमा ही हो। गांव आमतौर पर बौद्धिक और सांस्कृतिक रूप से पिछड़े होते हैं, और पिछड़े वातावरण में प्रगति सम्भव नहीं होती है। संकीर्ण मानस वाले लोगों के झूठे और हिंसक होने की कहीं ज्यादा सम्भावना होती है।''

गांधी ने जरूरी समझा था कि अपने पत्र में नेहरू को साफ साफ बता दें ''अगर ऐसा समझोगे कि मैं आज की देहातों की बात करता हूं तो मेरी बात नही समझोगे''। तो क्या नेहरू को कोई

बुनियादी दिक्कत हो रही थी गांधी की बात समझने में? लगता है कि शहर से अलग सांस्कृतिक जीवन की सम्भावना ही नेहरू की कल्पना से परे थी। सो कई अबज लोगों के महलों, और शहरों में न रह सकने के गांधी के तर्क का नेहरू ने इस तरह प्रतिवाद किया ''करोड़ो लोगों के लिए महलों का सवाल नहीं उठता। पर इसकी तो कोई वजह नहीं कि करोड़ो लोग सुविधा सम्पन्न आधुनिक घरों मे रह कर सुसंस्कृति जिन्दगी न बसर करें। आज तमाम ऐसे शहरों में जो सीमा से ज्यादा बढ़ गये है। तमाम घृणित बुराइयां फैल गयी है। शायद हमें इस वृद्धि को रोकना होगा और साथ ही ऐसी कोशिश भी करनी होगी कि गांव शहरी संस्कृति के ज्यादा नजदीक आ जायें। गांधी के बरक्स नेहरू गांव के सुसंस्कृत होने की कल्पना तभी कर सकते थे जब गांव सांस्कृतिक दृष्टि से नगरों के सांचे में ढल जायें''।

सीधे-सीधे 'हिन्द स्वराज' के मसले पर नेहरू ने आश्चर्य जताते हुए लिखाः ''मैंने बहुत बरस पहले हिन्द स्वराज पढ़ा था, और अब उसकी सिर्फ एक धुंधली तस्वीर मेरे जेहन में है। लेकिन जब मैंने बीस साल पहले इसे पढ़ा था तब भी यह पुस्तक मुझे बिल्कुल अवास्तविक लगी थी। उसके बाद से आपके लेखन व भाषणों में मैंने बहुत कुछ ऐसा पाया है जो उस पुरानी स्थिति से आगे है और जिसमें आधुनिक प्रवृत्तियों का समालोचन है। इसलिए मुझे तो अचरज हुआ जब आपने हमें बताया कि आपके दिमाग में अभी तक वही तस्वीर बरकरार है। जैसा कि आप जानते हैं, उसका अपनाना तो दूर, कांग्रेस ने उस तस्वीर पर कभी विचार तक नही किया है।आपने भी सिवाय इसके छोटे मोटे हिस्सों के, कभी कांग्रेस से इस तस्वीर को अपनाने के लिए नहीं कहा। आप ही फैसला करें कि क्या कांग्रेस के लिए ऐसे बुनियादी सवालों पर विचार करना उचित होगा जिनसे विभिन्न जीवन दर्शनों का सम्बंध है। मैं समझता हूं कि कांग्रेस जैसी संस्था को ऐसे मसलों पर तर्क में नहीं खो जाना चाहिए जिनसे लोगों के दिमाग चक्कर में पड़ जायें और वे वर्तमान स्थिति में कार्यरत होने की सामर्थ्य खो बैठें। इससे देश में कांग्रेस और दूसरों के बीच दूरी पैदा हो सकती है। अवश्य ही यह और दूसरे साल अंततः स्वाधीन भारत के प्रतिनिधियों द्वारा तय किये जायेंगे। हिन्द स्वराज को लिखे गये 38 (यहीं) बरस हो गये हैं। शायद गलत दिशा में, पर तब से अब तक दुनिया पूरी तरह से बदल गयी हैं। आपका कहना सही है कि दुनिया, या उसका बड़ा हिस्सा, लगता है आत्मघात पर आमादा है। हो सकता है यह अनिवार्य परिणति हो उस कुत्सित बीज की जो सभ्यता के साथ बढ़ता रहा है। मुझे ऐसा ही लगता है। हमारी समस्या यह है कि विगत और वर्तमान की अच्छाइयों को बनाये रखते हुए कैसे इस बुराई को समाप्त करें। स्पष्ट ही वर्तमान में भी अच्छाई है''।

नेहरू का पत्र पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि गांधी ने जो कुछ अपने 5 अक्टूबर के पत्र में लिखा उसको नहीं पढ़ रहे, बल्कि 'हिन्द स्वराज' की जो धुंधली पर अमिट छवि उनके (नेहरू के) मन पर पड़ी थी 20 बरस पहले उस पर अपनी प्रतिक्रिया दे रहे हैं। उसकी अवास्तविकता, उसकी अव्यावहारिकता को उजागर कर रहे हैं। गांधी द्वारा प्रस्तावित गांवो की केन्द्रीयता की अनर्गलता उद्घाटित करते हुए नेहरु लिखते हैं- ''फिर हमें भोजन, कपड़ा, आवास, शिक्षा, सफाई आदि में आत्मनिर्भरता जैसे कुछ उद्देश्य बनाने होंगे जिनको देश और हरेक देशवासी की न्यूनतम आवश्यकता माना जाये। इन उद्देश्यों को लेकर हमें सोचना होगा कि कैसे जल्दी से जल्दी उनको पूरा किया जाय। पुनः मुझे यह अनिवार्य लगता है कि यातायात के आधुनिक साधनों तथा दूसरी आधुनिक सुविधाओं को बनाये रखना व विकसित करना होगा। उनको अपनाये बगैर कोई रास्ता नहीं। अगर ऐसा है तो कुछ मात्रा में भारी उद्योग रहेगा ही। उसका कहां तक विशुद्ध ग्रामीण समाज के साथ मेल होगा? मैं स्वयं तो उम्मीद करता हूं कि यथासम्भव उद्योगों का विकेन्द्रीकरण हो, चाहे वे भारी हों या हल्के, और बिजली की शक्ति के विकास की वजह से अब ऐसा हो भी सकता है। अगर देश में दो प्रकार की अर्थव्यवस्थाएं रहती हैं तो या तो उनमें संघर्ष होगा या उनमें से एक दूसरी को खा जायेगी''।

फिर एक बार गांधी के पत्र को याद कर लें। भोजन, कपड़ा, मकान, शिक्षा सफाई इत्यादि में से किसकी जरूरत से गांधी से इनकार किया था? और आत्मनिर्भरता तो मूलमंत्र था उनका। रेल, डाक, तार या जो भी आवश्यक हो, ऐसी बहुत सी चीजों के रहने और बड़े पैमाने पर बनने की बात करके क्या उन्होंने नेहरू से नहीं कहा था कि प्रश्न यह नहीं था कि 'क्या होगा, क्या नही'? गांधी ''असली बात'' पर जोर दे रहे थे और वही नेहरू समझ नहीं रहे थे। नेहरू अकेले नहीं थे इसे न समझने में - गांधी को थोड़ी देर लगी। नेहरू के इस अनखाए जवाब के बावजूद - समझने में कि नेहरू, और नेहरू के साथ पूरी कांग्रेस और सारा देश, समझ नहीं पा रहा उनके सपने को। बहरहाल नेहरू को अपनी व्यस्तताओं के चलते अपने बापू से मिल कर इस मसले पर बात करने का मौका पूरे एक महीने बाद मिल पाया। न

ही इस दौरान वह वक्त निकाल पाये उस लम्बे पत्र को लिखने का जिसका वादा उन्होंने अपने 9 अक्टूबर के जवाब में किया था। बहरहाल दोनों 12 नवम्बर को मिले और मुलाकात के दूसरे ही दिन गांधी ने चि. जवाहरलाल को लिखाः ''हमारी कल की बात से मुझे तो बड़ा आनंद हुआ। उससे अधिक बात कल तो कर नहीं सकते थे और मेरा ख्याल ऐसा है कि हम एक ही वक्त मिल कर सब काम पूरा नहीं कर सकेंगे। समय-समय पर हमें अवश्य मिलना चाहिए। मैं तो ऐसे बना हूं कि अगर आज मेरी शक्ति इधर उधर जाने की रहे तो मैं ही तुमको ढूंढ लूं और भाग जाऊं। ऐसी आज मेरी स्थिति नहीं रही है लेकिन ऐसा मैंने किया है इतना समझो। मै चाहता हूं कि हम एक दूसरे को समझ लें। अंत में ऐसा हो सकता है कि हमारा मार्ग ही अलग है तो अलग सही। हमारा हृदय तो एक ही रहेगा, क्योंकि एक है। कल की बात से मैं यह समझा हूं कि हम दोनों में विचार श्रेणी में या तो वस्तु समझने में बड़ा अंतर नहीं है। तुमको किस तरह समझा हूं वह बताना चाहता हूं जिससे अगर फरक हो तो मुझे बता दोगे''। इसके बाद सिलसिलेवार चार बातें लिखी गांधी ने, और कहा यहां तक मैं अगर ठीक समझा हूं तो दूसरा हिस्सा मैं शुरू करूंगा। उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर लगभग निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि दूसरे हिस्से को लिखने की जरूरत पड़ी ही नहीं गांधी को। नेहरू ने गांधी को नहीं बताया कि उन चार बातों को गांधी ठीक से समझे थे या नहीं। बाकी बची बातें वह ठीक समझे थे या नही, फिजूल था इसके बाद जानने की कोशिश करना। उतना ही फिजूल था वर्किंग कमेटी की उस बैठक को बुलाने का जिद करना जो तय किया गया था बैठेगी इस मामले पर विचार करने के लिए। सम्भव असम्भव की गांधी की समझ अद्‌भुत थी। जहां लोगों को निराशा ही निराशा दिखायी देती थी, गांधी ऐसी कोई असम्भव लगती गुन्जाइश ढूंढ कोई काम शुरु कर देते थे जो, शुरु होते समय महज, शेखचिल्लीपन दिखायी देता था। असहयोग और नमक दो ऐसे ही आंदोलन थे। सम्भव नहीं हास्यास्पद लगे थे जब गांधी ने उनका प्रारूप पहली बार रखा था। पर, भले ही देर से समझें, एक बार समझ जाये वह कि फला चीज असम्भव है तो तुरंत मुल्तवी कर देते थे या तज देते थे उसे। ऐलान करके कि देश का बंटवारा उनकी लाश पर होगा पाकिस्तान को मान लेना उसी का एक ऐसा दृष्टांत है जिसे अभी तक कम लोग ही समझ पाये हैं। सो, भविष्य के लिए जो भी सोचा हो उन्होंने, 13 नवम्बर के बाद छोड़ दिया गांधी ने 'हिन्द स्वराज' के अमलीकरण का आग्रह।

इसी से जुड़ता है दूसरा सवाल। हम क्यों इस समय 'हिन्द स्वराज' को लेकर इतने उत्साहित हैं? जगह-जगह आयोजन हो रहे हैं, तरह तरह की गोष्ठियां हो रही है, पत्र पत्रिकाओं में लेख छप रहे हैं। विशेषांक निकल रहे हैं। जैसे हर साल, सारे वक्त गांधी को भूले और नकारते रहते, हम दो बार उनको स्मरण याद करते रहते हैं, इस बरस, शताब्दी की रस्म निभाते हुए, हम पूरे साल गांधी को, विशेष रूप से हिन्द स्वराज के संदर्भ में, याद कर रहे हैं। और चूंकि रिवाज है ऐसे मौकों पर अच्छा अच्छा बोलने का, हम भी बता रहे हैं कि विनाश की ओर जाती दुनिया को विकल्प की जरूरत है और ऐसा ही एक अनोखा, समग्र और सुचिन्तित विकल्प गांधी ने हिन्द स्वराज में हमें दे दिया है।

लेकिन और यह बड़ा गम्भीर लेकिन है-क्या वाकई हम ऐसा मानते हैं ? क्या हमने वाकई 'हिन्द स्वराज' आद्योपांत और सोच समझ कर पढ़ा हैं ? और पढ़ा है तो क्या हमें उसकी भाषा और तर्क प्रणाली और उसके विचारों को लेकर बार-बार, या कई बार, कुछ वैसी ही खीझ नहीं हुई है जैसी नेहरू को हुई थी? क्या हम खुद उस तरह की जिन्दगी जीना चाहते हैं जो 'हिन्द स्वराज' या नेहरू को भेजे पत्र में गांधी ने एक आदर्श विकल्प के रूप में सुझायी हैं ? 'हिन्द स्वराज' कोई सामान्य पुस्तिका नहीं है। व्यवहार की सम्भावना को दरकिनार कर इस पर मात्र बौद्धिक विमर्श का कोई विशेष प्रयोजन नहीं हो सकता। 22 नवम्बर 1909 को पुस्तिका पूरी करने के तुरंत बाद लिखी गयी इसकी भूमिका में गांधी ने कहा था कि उनका मकसद केवल ग्रंथ रचना नहीं था। असल मकसद था इसके मुताबिक जीवन जीने का। साथ ही उन्होंने जोड़ दिया था कि इसके मुताबिक जीवन बरतने के दौरान अगर इसमें व्यक्त विचार गलत साबित हुए तो उनसे चिपके रहने का उनका (गांधी का) कोई इरादा नहीं था।

अंत तक वह निजी स्तर पर, हिन्द स्वराज को अमल में लाते रहे और इसमें कोई भी संशोधन करने की उन्हें जरूरत नहीं दिखायी पड़ी। दिन-ब-दिन इसमें उनका विश्वास दृढ़ ही होता गया। हम किस बिना पर 'हिन्द स्वराज' हिन्द स्वराज' कर रहे हैं? बहुत सम्भव है कि किसी आने वाले कल में गांधी द्वारा आलोचित 'शैतानी' आधुनिक सभ्यता अपने किये के परिणामस्वरूप विनष्ट हो जाय, और उसकी जगह 'हिन्द स्वराज'

जैसा विकल्प अस्तित्व में आ जाय। अगर कभी ऐसा हुआ तो वह गांधी या 'हिन्द स्वराज' या मानव जाति के विवेक की जय नहीं होगी। वह परिणति होगी एक त्रासद ऐतिहासिक अनिवार्यता की।

गांधी स्वयं 'हिन्द स्वराज' के मामले में खासे हताश हो गये थे। उन्होंने कहा थाः मेरी आंखों से पढ़ो 'हिन्द स्वराज'। गांधी की आंखे लोग पा सकते तो उन्हें जरूरत ही नहीं पड़ती ऐसी हताश अपील करने की। लगता है गांधी की आंखे अभी भी मयस्सर नहीं हैं हमें। जो बात मैं कहना चाह रहा हूं वह एक तरह से पूरी हो गयी। पर मुझे लगता है कि अगर इसको यहीं रोक दिया तो गलत समझे जाने की काफी गुंजाइश रहेगी। लगेगा कि गांधी की बात मानने का इसरार किया जा रहा है। वैसा कुछ नहीं है। असल में गांधी की आंख बड़ी पैनी आंख थी और उसका पैनापन खुद गांधी को भी नहीं बख्शता था। वह आंख चीजों को समग्रता में और उनकी अनिवार्य अस्थिरता में देखती थी। बहुत गौर से न भी पढ़ें तो भी आश्चर्य होता है कि 'हिन्द स्वराज' के 1909 वाले पाठ में केवल एक शब्द बदलने की जरूरत मानने वाले गांधी किस तरह से 1945 में उसको पढ़ रहे थे कि, बगैर, उस पाठ को तजे, 5 अक्टूबर वाला पत्र नेहरू को लिख सके। कितना विचित्र है कि बीस सालों के दौरान गांधी में आये बदलाव को देख नेहरू को यह तो विश्वास हो गया कि गांधी 'हिन्द स्वराज' को पीछे छोड़ आये हैं, यह संदेह न हुआ कि उनकी (नेहरू) की अपनी समझ 'हिन्द स्वराज' की गड़बड़ हो सकती है, और वजह हो सकती है गांधी की 'हिन्द स्वराज' की हिमायत पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की। हमारी आंख भी, लगता है, नेहरू की आंख है। हमें दिक्कत होती है 'हिन्द स्वराज' के 1909 के अपरिवर्तित पाठ का 5 अक्टूबर 1945 वाले पत्र से मेल बिठाने में। इसके बरक्स गांधी की आंख, उस पाठ के किसी केन्द्रीय 'असल' को बनाये रखते हुए, उसकी पुनर्व्याख्या करती रहती है। अर्थोत्पत्ति की ऐसी जीवंत मौलिकता हम समझ नही पाते। हमें एक दूसरा ही प्रश्न परेशान करता रहता है कहां तक किसी शब्द का अर्थ विस्तार हो सकता है कि वह कोई दूसरा शब्द न बन जाये। वैसे अगर अंत में हमें 5 अक्टूबर 1945 वाला पत्र 'हिन्द स्वराज' से हटता भी लगे, उसका निषेध करता भी लगे, तो गांधी उसी पत्र के शुरू में ही कह चुके हैं कि महत्वपूर्ण है, जानना मैं आज क्या कहता हूं, न कि पहले कहे को सिद्ध करना।

लाल गुलाब सरीखे बापू

गोपीचंद नारंग

एक फूल से खिल जाते थे
हमजोली से बन जाते थे
बच्चों के रंग, रंग जाते थे
लाल गुलाब सरीखे बापू।।
बच्चे उनके राजदुलारे
बच्चे उनके चाँद सितारे
बच्चों के संग मन मुस्काते
मन के बच्चे, सच्चे बापू।।
बच्चों से हिल-मिल जाते
खिल-खिल हँसते और हँसाते
बच्चों में बच्चे बन जाते
बच्चों के संग बच्चे बापू।।
जब भी बच्चे कहते बापू।
बापू हो जाते बेकाबू
बच्चों के संग घुल-मिल जाते
मधु से मीठे अच्छे बापू।।

तुम कागज पर लिखते हो

भवानी प्रसाद मिश्र

सूत कातते थे गांधी जी
कपड़ा बुनते थे,
और कपास जुलाहों के जैसा ही
धुनते थे
चुनते थे अनाज के कंकर
चक्की पीसते थे
आश्रम के अनाज याने
आश्रम में पिसते थे
जिल्द बांध लेना पुस्तक की
उनको आता था
भंगी-काम सफाई से
नित करना भाता था।
ऐसे थे गांधी जी
ऐसा था उनका आश्रम
गाँधी जी के लेखे
पूजा के समान था श्रम।

युगावतार गांधी

सोहनलाल द्विवेदी

चल पड़े जिधर दो डग मग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि
गड़ गये कोटि दृग उसी ओर,
जिसके सिर पर निज धरा हाथ
उसके सिर-रक्षक कोटि हाथ,
जिस पर निज मस्तक झुका दिया
झुक गये उसी पर कोटि माथ,
हे कोटिचरण, हे कोटिबाहु!
हे कोटिरूप, हे कोटिनाम!
तुम एकमूर्ति, प्रतिमूर्ति कोटि
हे कोटिमूर्ति, तुमको प्रणाम!

महात्मा गाँधी और इलाहाबाद विश्वविद्यालय

कुमार वीरेन्द्र

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सीनेट हॉल में पूरब की ओर से प्रवेश करने पर नज़र अपने आप सामने की दीवार पर लगे उस चित्र–फ्रेम पर चली जाती है, जिसमें एक मनुष्य 'अधनंगे फकीर' की वेश–भूषा में हाथ में अख़बार लिए गांव की पगडंडी पर तेज कदमों से लक्ष्य की ओर चला जा रहा है, जिसकी परछाई धरती पर स्थायी भाव की तरह पसरी हुई है। यह तस्वीर उस इंसान की है, जिसने 10 मई, 1921 की एक सभा में कहा था कि 'प्रयाग तो अब मुझे अपना घर–सा ही प्रतीत होता है'। इस शहर को अपना घर–सा मान लेने की उनकी (गाँधीजी की) नेकदिली का ही परिणाम था कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विद्यार्थी, शिक्षक और कर्मचारी यह चाहते थे कि गाँधी जी इलाहाबाद जब भी आएं, विश्वविद्यालय परिसर में भी आएं अथवा विद्यार्थियों, शिक्षकों को परिसर के बाहर ही मुलाकात का समय दें। इसी इरादे से इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र–नेताओं ने गाँधी जी की उपर्युक्त तस्वीर को एक मशहूर चित्रकार से बनवाकर, अनावरण के लिए सन् 1938 में गाँधी जी को आमंत्रित किया। अत्यधिक व्यस्तता के कारण गाँधी जी अपने इस चित्र का अनावरण करने तो आ नहीं पाये, पर पत्र लिखकर उन्होने यह संदेश अवश्य भेजा कि 'ऐसा कोई कारण नहीं है कि अहिंसा को छोड़कर दूसरा रास्ता अपनाया जाए'। इसके पहले भी गाँधी जी ने विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों में जोश भरा था।

30 नवम्बर, 1920 को इलाहाबाद के आनन्द भवन (स्वराज भवन) में इलाहाबाद विश्वविद्यालय और शहर के कुछ विद्यालय के विद्यार्थियों की एक सभा हुई, जिसमें गाँधी जी ने विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा कि 'स्वतंत्रता का इतना ही अर्थ है कि हम किसी से भी न डरें और जो हमारे दिल में हो वही कह सकें, कर सकें। जो लड़का करोंडों मनुष्यों के सामने सीधा खड़ा रहकर अपनी बात कह सके , वह सच्चा साहसी है। इसलिए आपके लिए तो पहिला पाठ तो 'न' कहना सीखना है। यह ज्यादा अच्छा है कि आप प्रतिज्ञा न लें, प्रतिज्ञा लेकर तोड़ना भयंकर अपराध है। शास्त्रों में कहा है कि प्रतिज्ञा लो तो उसके लिए मरो। हाँ, व्यभिचार की, झूठ की प्रतिज्ञा ली हो तो अवश्य तोड़ी जा सकती है पर त्याग करने की प्रतिज्ञा कभी बदली नहीं जा सकती। इसलिए मैं विनयपूर्वक कहता हूँ कि कसम न लो और कसम लो तो पृथ्वी धरातल में चली जाए तो भी उसे न तोड़ो।' असल में नवंम्बर, 1920 में ही झाँसी के विद्यार्थियों ने असहयोग आन्दोलन के दौरान कुछ हिंसक घटनाएँ की थीं। गाँधी जी सशंकित थे कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विद्यार्थी भी ऐसी घटनाएं न कर बैठें। इसलिए इलाहाबाद के विद्यार्थियों को उन्होंने इस संदर्भ में नसीहतें दीं।

विद्यार्थियों की इसी सभा में उन्होंने अंग्रेजी राज के खिलाफ विद्यार्थियों की सुप्त भावनाओं को जगाते हुए कहा था कि 'इस राज्य और रावण–राज्य में फर्क नहीं है। कुछ फर्क हो भी तो वह इतना ही है कि रावण के हृदय में कुछ दया होगी, कुछ कम दगा होगी। रावण को ईश्वर का भय तो था परंतु हमारी हुकूमत तो खुदा को घोलकर पी गयी हैं। उसका खुदा तो उसका अहंकार, उसकी दौलत और उसकी दगा है। यूरोपीय संस्कृति शैतानियत से भरी है परन्तु उसमें भी अंग्रेजी हुकूमत सबसे अधिक शैतानियत से भरी है। मैं इसके आश्रय में एक क्षण भी नहीं रहना चाहता। आपको सरकार में मेरी तरह बुराई न दिखाई देती हो तो आप बेशक अपनी पाठशालाओं, परिसरों में पढ़ते रहें किन्तु

यदि आप मेरे विचार के हैं तो इस हुकूमत की पाठशाला में गीता पढ़ना भी व्यर्थ है। इस सारी शिक्षा में जहर भरा है क्योंकि वह हमें और पक्का गुलाम बनाने के लिए है। हमारी लड़ाई धर्म की है, सरकार की अधर्म की है। उसके साथ सम्बन्ध रखना अधिक हैवान बनने और ज्यादा पक्का गुलाम बनाने के बराबर है।'

गाँधी जी ने विद्यार्थियों में उत्साह भरते हुए कहा कि 'मैं आपको कोई नशा नहीं देता चाहता। आपकी तालीम का नशा आपके लिए काफी है। मैं आपमें शांत साहस फूँकना चाहता हूँ। मैं यह चाहता हूँ कि आपका हृदय कुर्बानी और तपश्चर्या के योग्य पवित्र बने।'

इसके पूर्व गाँधी जी ने इलाहाबाद के म्योर सेंन्ट्रल कॉलेज (1 जुलाई, 1872 को स्थापित, 23 सितंबर 1887 से इलाहाबाद विश्वविद्यालय की एक इकाई, 1921 से इसका स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में विलीन, अब विज्ञान संकाय) में अपनी दृष्टि को स्पष्ट करते हुए कहा था कि 'ब्रिटिश शासन में हमनें बहुत कुछ सीखा है, किन्तु मेरा यह निश्चित मत है कि ब्रिटेन यथार्थ नैतिकता की दिशा में कुछ भी देने में असमर्थ है। हम उस संबंध से उसी दशा में लाभ उठा सकते हैं जब हम अपनी सभ्यता और अपनी नैतिकता से विचलित न हों। हमें सर्वप्रथम दैवी सम्पद की परम पिता के राज्य और उसकी पवित्रता की कामना करनी चाहिए। जो ऐसा करेगा उसे यह अमोध वचन मिला हुआ है कि उसके पास सब वस्तुएँ आ जायेंगी। सच्चा अर्थशास्त्र यही है।'

उपर्युक्त बातें गाँधी जी ने 22 दिसंबर 1916 को म्योर सेंट्रल कॉलेज की अर्थशास्त्र समिति के तत्वाधान में आयोजित सभा में कहीं थी। इस सभा की अध्यक्षता पं0 मदन मोहन मालवीय ने की थी और इसमें डॉ तेजबहादुर सप्रू, डॉ. सुन्दरलाल (विश्वविद्यालय के उप–कुलपति), एच. एस.एल. पोलक, सी.वाई. चिन्तामणि, शिव प्रसाद गुप्त, पुरूषोत्तम दास टंडन तथा डॉ ई.जी. हिल (म्योर सेंट्रल कॉलेज के प्रधान अध्यापक) जैसे अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे। व्याख्यान का विषय था – 'क्या आर्थिक उन्नति वास्तविक उन्नति के विपरीत जाती है'? इस विषय पर विस्तारपूर्वक अपनी बातें रखते हुए गाँधी जी ने कहा कि 'मेरा ख्याल है कि आर्थिक उन्नति का अर्थ हम सीमा–विहीन भौतिक प्रगति लगाते हैं और वास्तविक उन्नति को हम नैतिक प्रगति का पर्याय मानते हैं। यह नैतिक प्रगति हमारे अन्तर में रहने वाले शाश्वत अंश के विकास के सिवा और क्या है? अतएव प्रस्तुत विषय को दूसरे शब्दों में इस प्रकार रखा जा सकता हैः क्या नैतिक उन्नति उसी अनुपात में नहीं हुआ करती जिस अनुपात में भौतिक उन्नति होती है?'

गाँधी जी ने थोड़ी तल्खी के साथ आगे कहा कि 'यह तो आज तक किसी ने भी नहीं कहा कि अतिशय दरिद्रता नैतिक पतन के अतिरिक्त कुछ और दे सकती है। प्रत्येक मनुष्य को जीवित रहने का अधिकार और इसलिए उसे पेट भरने के लिए भोजन तथा आवश्यकतानुसार तन ढँकने के लिए वस्त्र और रहने के लिए मकान जुटाने का अधिकार है। परंतु इस बिल्कुल मामूली से काम के लिए हमें अर्थशास्त्रियों अथवा उनके द्वारा गढ़े गये विषयों की मदद की जरुरत नहीं हैं।

किसी भी सुव्यस्थित समाज में रोजी कमाना सबसे सुगम बात होनी चाहिए और हुआ करती है। निस्संदेह किसी देश की सुव्यवस्था की पहचान यह नहीं है कि उसमें कितने लखपति लोग रहते हैं बल्कि यह कि जन–साधरण का कोई भी व्यक्ति भूखों तो नहीं मर रहा है।'?

इसके बाद गाँधी जी ने कहा कि 'अब केवल यही बात देखनी रह जाती है कि क्या भौतिक उन्नति का अर्थ ही नैतिक उन्नति है?'

इसके लिए गाँधी जी ने दुनिया भर से दृष्टांत दिए, भौतिक रूप से उन्नति के शिखर पर पहुँचे रोमन लोगों के नैतिक पतन, मिस्त्र और दक्षिण अफ्रीका के लोगों के नैतिक स्तर के दृष्टांत दिए और अपना अनुभव साझा करते हुए कहा कि 'दक्षिण अफ्रीका में मुझे अपने हजारों देशवासियों के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त था, मैने वहाँ लगभग सदा यही देखा कि आर्थिक दृष्टि से जो जितना ही सम्पन्न होता था उसका नैतिक स्तर उतना ही गया–गुजरा होता था। सत्याग्रह के हमारे नैतिक संघर्ष को गरीबों से जितना बल मिला, उतना अमीरों से नहीं।'

गाँधी ने इसके आगे यह कहा कि 'प्रस्तुत प्रश्न के उत्तर के अनुमोदन के लिए सबसे अधिक विश्वसनीय और जोरदार प्रमाण संसार के सबसे बड़े उपदेशकों के जीवन–चरित हैं। ईसा मसीह, मुहम्मद, बुद्ध, नानक, कबीर, चैतन्य, शंकराचार्य, दयानन्द, रामकृष्ण ऐसे व्यक्ति थे जिनका लाखों नर–नारियों के हृदयों पर प्रभाव था और जिन्होने असंख्य व्यक्तियों का चरित्र गढ़ा है। ध्यान रहे कि ये सब ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने जान बूझकर गरीबी को अपनाया था।'

गाँधी ने कहा कि 'यदि मेरा यह विश्वास न होता कि जिस हद तक हम आधुनिक भौतिकवाद के पीछे दीवाने बने रहेंगे उस हद तक हम उन्नति के मार्ग से दूर रहकर अवनति की दिशा में अग्रसर होते जायेंगे, तो मैंने आज जो इस प्रकार विस्तारपूर्वक अपनी बात आपके सामने रखने का प्रयास किया है सो कदापि न करता/ मेरी धारणा है कि आर्थिक उन्नति वास्तविक उन्नति के विरुद्ध पड़ती है, यही कारण है कि हमारा प्राचीन आदर्श धन–सम्पत्ति में वृद्धि करनेवाली गतिविधियों पर नियंत्रण रखता रहा है। परमेश्वर और माया दोनो को एक साथ नहीं साधा जा सकता। यह अत्यंत महत्वपूर्ण आर्थिक सत्य है। हमें इन दोनो में एक को चुन लेना है। गाँधी ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा कि 'हमें बताया गया है कि हमारे इस देश में कभी देवता निवास करते थे। जिस देश को मिलों की चिमनियों से निकलने वाला धुआँ और कारखानों का कर्कश स्वर भयानक बनाये हुए हैं, जिसकी सड़कों पर ऐसे मुसाफिरों से भरी गाड़ियाँ तेजी से इधर–उधर दौड़ रही हैं, जो नहीं जानते कि उनका लक्ष्य क्या है और जो प्रायः भ्रान्तचित रहते हैं, उस देश में देवताओं के निवास की कल्पना करना असम्भव है। मैं इन बातों का जिक्र इसलिए कर रहा हूँ कि ये भौतिक उन्नति की प्रतीक मानी जाती हैं किन्तु इनसे हमारे सुख में एक कण की भी वृद्धि नहीं होती'।

तब के म्योर सेंट्रल कॉलेज और अब के इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कही गयीं गाँधी की उपर्युक्त बातें लोगों को आज भी संवेदित और प्रश्नाकुल बनाती हैं।

गाँधी जी पहली बार इलाहाबाद 5 जुलाई, 1896 को आए, हालांकि यह अकस्मात् यात्रा थी, फिर भी उन्होंने इलाहाबाद में पहली मुलाकात मि0 चेजनी से की, जो कि 'पायोनियर' के संपादक थे। मि0 चेजनी से मिलने के लिए वह उस भवन तक ताँगे से पहुँचे जहाँ चेजनी बैठते थे। यह वही भवन है जहाँ एक जमाने में 'इन्डियन प्रेस' भी था, जहाँ आजकल इलाहाबाद विश्वविद्यालय का 'मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग' है। इसके तहखाने में आज भी छपाई की कई मशीनें पड़ी हुई हैं। इसी तहखाने से हाल में मुगलकालीन अथवा ब्रिटिशकालीन 40 किलोग्राम वजन की एक बंदूक और बीस–बीस किलोग्राम के तोप के दो गोले

निकले हैं। संभव है हथियार छुपाने के लिए प्रेस क्रांतिकारियों की सबसे मुफीद जगह मानी जाती रही हो। यह अकारण नहीं है कि इस भवन में इतिहास विभाग शुरु हुआ। 'गाँधी जी' के इसमें आगमन एवं 'पायोनियर' के प्रकाशन एवं इन्डियन प्रेस के कारण इसकी ऐतिहासिकता प्रमाणित है। हां, ये अवश्य है कि जब गांधी जी इसमें आए थे तो यह विश्वविद्यालय का हिस्सा नहीं था, महज एक प्रेस था और सन 1884 में यहां शुरू हुआ था। सवाल है कि गांधीजी यहां पहुंचे कैसे? असल में गांधीजी मई 1893 में दक्षिण अफ्रीका गए। तीन वर्षों में वह वहाँ एक संपन्न वकील, प्रमुख राजनेता और विवेकवान संगठनकर्ता बन गए। लेकिन वह वहाँ परिवार के साथ न थे। इसलिये अपने परिवार को लिवा लाने के लिए 5 जून 1896 को वह पोंगोला जहाज से भारत के लिए रवाना हो गए। करीब 24 दिनों की यात्रा के बाद डरबन से हुगली पहुंचे और 4 जुलाई 1896 को कोलकाता मुंबई मेल से राजकोट के लिए चल पड़े। यह ट्रेन इलाहाबाद से होकर गुजरती थी और 45 मिनट रुकती थी। 5 जुलाई के दिन 11:00 बजे यह ट्रेन इलाहाबाद पहुंची और तकरीबन 45 मिनट रुकी रही। बकौल गांधी– "मैंने सोचा कि इतने समय में जरा शहर देखा आऊं । मुझे औषधि विक्रेता के यहां से दवा भी लेनी थी। औषधि विक्रेता ऊँघता हुआ बाहर आया। दवा देने में बड़ी देर लगा दी। ज्योंही मैं स्टेशन पहुंचा गाड़ी चलती हुई दिखाई दी। भले स्टेशन मास्टर ने गाड़ी 1 मिनट रोकी भी पर मुझे वापिस न आता देखकर मेरा सामान उतरवा लिया।"

जब गाड़ी छूट गई और दूसरे दिन ही जाना संभव हो सकेगा, तब गांधी ने इलाहाबाद में एक दिन रुकने का निर्णय लिया और इस अप्रत्याशित रुकावट का सदुपयोग करने का मन बनाया। बकौल गांधी "मैं केलनर के होटल में उतरा और वहीं से अपना काम शुरू करने का निश्चय किया। यहां (प्रयाग) के पायोनियर पत्र की ख्याति मैंने सुनी थी। यह भारत की आकांक्षाओं का विरोधी है यह मैं जानता था। मुझे याद पड़ता है कि उस समय मिस्टर चेजनी उसके छोटे संपादक थे। मैं तो सब पक्षों के आदमियों से मिलकर सहायता प्राप्त करना चाहता था। इसलिए मैंने मिस्टर चेजनी को मुलाकात के लिए पत्र लिखा। अपनी ट्रेन छूट जाने का हाल लिखकर उन्हें सूचित किया कि कल ही मुझे प्रयाग से चले जाना है। उत्तर में उन्होंने तुरंत मिलने के लिए बुलाया। मुझे खुशी हुई । उन्होंने गौर से मेरी बातें सुनीं। मुझे आश्वासन दिया कि आप जो कुछ लिखेंगे, मैं उस पर तुरंत टिप्पणी करूंगा परंतु मैं आपको यह वचन नहीं दे सकता कि आपकी सब बातों को मैं स्वीकार कर सकूंगा। औपनिवेशिक दृष्टि बिंदु (दक्षिण अफ्रीका के गोरों का) भी तो हमें समझना और देखना चाहिए न?"

"मैंने कहा – आप इस प्रश्न का अध्ययन करें और अपने पत्र में इसकी चर्चा करते रहें, इतना ही मेरे लिए काफी है। शुद्ध न्याय के अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं चाहता। मिस्टर चेजनी से मिलने के बाद गांधीजी त्रिवेणी संगम गए और वहां स्नान–दर्शनादि किए । लौटकर केलनर होटल में भोजन –विश्राम किया और अपने आगामी कार्यक्रम पर सोच –विचार करते रहे। दूसरे दिन यानी 6 जुलाई, 1896 को वह कलकत्ता – बम्बई मेल से बंबई के रास्ते राजकोट के लिए रवाना हो गए।

वैसे तो प्रयाग की उनकी पहली यात्रा आकास्मिक और अप्रत्याशित थी, लेकिन उनके जीवन की एक प्रमुख घटना इसलिए बन गई, क्योंकि यहीं उन्होंने "ग्रीन पेंपलेट" (हरी

पुस्तिका) लिखने का निश्चय किया। गांधीजी मुंबई में बिना रुके सीधा राजकोट गए और इस पुस्तिका को लिखने की तैयारी में लग गये । उसे लिखने और छपाने में लगभग एक महीना लग गया । इसका मुख्य पृष्ठ हरा था, इसके कारण वह "हरी पोथी" के नाम से प्रसिद्ध हुई। हरी पुस्तिका की दस हजार प्रतियां छपवाकर सारे हिंदुस्तान के अखबारों और सब दलों के प्रमुख पुरूषों के पास गांधी जी ने भेज दीं। इलाहाबाद के इस पायोनियर में उस पर सबसे पहले लेख निकला । उसका सारांश लंदन गया और फिर इस सारांश का सारांश रायटर के द्वारा नेटाल (दक्षिण अफ्रीका) गया। नेटाल में हिंदुस्तानियों के साथ होने वाले व्यवहार का चित्र गांधी जी ने इस पुस्तिका में खींचा था उसका ये 'लघु संस्करण' था और गांधी जी के शब्दों में न था, तोड़ा–मरोड़ा गया था। धीरे–धीरे सब प्रमुख पत्रों में इस प्रश्न की विस्तृत चर्चा हुई, जिसके कारण नेटाल के गोरे गांधी जी के विरूद्ध इतने उत्तेजित हो उठे कि वहां लौटने पर, खुले आम मारक प्रहार किया और जिसके कारण इनकी ख्याति और दूर–दूर तक फैल गयी। गांधीजी ने स्वीकार किया कि 'प्रयाग में पायोनियर के छोटे संपादक मिस्टर चेजनी से इस अनसोची मुलाकात ने मुझ पर नेटाल में हुए हमले का बीज बोया'।

गांधीजी समय के सबसे बड़े सर्वेक्षक थे। उनका मिनट–मिनट पर कार्यक्रम निर्धारित होता था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यापक डॉ. रामकुमार वर्मा सन 1937 में गांधी जी से मिलने सेवाग्राम वर्धा गए। डॉ. वर्मा को गांधी जी से मिलने के लिए प्रातः 8:30 का समय निश्चित किया गया। डॉ. वर्मा को निर्धारित समय से 10 मिनट का विलंब हो गया और गांधी जी अपना दूसरा कार्यक्रम करने लगे। फिर भी उन्होंने डॉक्टर वर्मा को सामने बिठाया और श्रीमन्ननारायण ने परिचय दिया कि डॉ रामकुमार वर्मा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं और असहयोग आंदोलन में सन 1921 में स्कूल छोड़ दिए थे। गांधी जी ने राम कुमार जी को प्रोफेसर होने पर बधाई दी, लेकिन अपनी धोती की पट्टी से घड़ी निकाल कर कहा "प्रोफेसर को 10 मिनट की देर हो गई।" उन्होंने जोर देकर कहा कि "जब प्रोफेसर को 10 मिनट की देर होती है तो उसके विद्यार्थियों को 10 घंटे की देर होती है। जब विद्यार्थियों को 10 घंटे की देर होती है तो समाज को 10 महीने की देर होती है, और जब समाज को 10 महीने की देर होती है तब देश 10 वर्ष पीछे चला जाता है। प्रोफेसर की 10 मिनट की देरी देश को 10 वर्ष पीछे ले जाती है"। गांधी जी ने डॉ. रामकुमार वर्मा से व्यंग्य में पूछा कि 'ये बात ठीक है न प्राफेसर साहब?' रामकुमार जी ने देर के लिए क्षमा मांगी, तो गांधी जी ने कहा कि "विदेशों में जिन देशों ने प्रगति की है, उन्होंने समय की गति को पहचाना है।

आज गांधी इलाहाबाद विश्वविद्यालय में तरह–तरह से हमारे आस– पास हैं, उनके विचार–दर्शन विभिन्न विभागों के पाठ्यक्रम के अभिन्न हिस्से हैं। अभी उनकी 150 वीं जयंती के अवसर पर विश्वविद्यालय की केन्द्रीय सांस्कृतिक समिति ने गांधी सप्ताह का आयोजन कर और वर्ष भर गांधी चर्चा, गांधी– व्याख्यान का आयोजन कर गांधी को फिर–फिर देखा। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों –शिक्षकों ने गांधी जी को फिर फिर पढा, याद किया और बहस में हिस्सा लिया। विश्वविद्यालय के गांधी भवन ने तो सन् 1990– 95 के आस–पास गांधी दर्शन की राह पर चलकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों और डंकल प्रस्ताव के विरुद्ध नई आजादी का उद्घोष ही कर दिया था, जिनकी अगुवाई गणित के गांधी प्रोफेसर बनवारी लाल शर्मा करते थे। यूनिवर्सिटी थियेटर की ओर से लगातार 'जब वी मेट' गांधी का मंचन भी चल रहा है।

गांधीवाद, हिन्द स्वराज और हमारा समय

डॉ. दिनेश कुमार

महात्मा गांधी विशुद्ध राजनीतिक विचारक नहीं थे। उनके चिन्तन के केन्द्र में मनुष्य का सर्वांगीण विकास था। राजनीति को उन्होंने नैतिकता के साधन के रूप में देखा और उसी रूप में अपनाया। उनकी यह विशिष्टता ही उन्हें आधुनिक युग के तमाम विचारकों से अलग कर देती है। वे सच्चे कर्मयोगी थे। व्यावहारिक जीवन में जो समस्याएं समय-समय पर उनके सामने आयीं उनका समाधान करते हुए वे आगे बढ़ते गये। उन्होंने किसी नये वाद को जन्म नहीं दिया। इस संदर्भ में उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि गांधीवाद' नाम की किसी विचारधारा का कोई अस्तित्व नहीं है। वस्तुतः 'वाद' विचारों की एक व्यवस्था (सिस्टम आफ थाट्स) है। गांधी ने अपने विचारों अथवा सिद्धांतों को विशेष प्रणाली के रूप में विकसित करने के उद्देश्य से किसी ग्रंथ की रचना नहीं की। फिर भी, उन्होंने कुछ निश्चित सिद्धांत अवश्य विकसित किये। इन सिद्धांतों को हम अपनी सुविधा के लिए 'गांधीवाद' के रूप में पहचानते हैं।

'हिन्द स्वराज' को उन्होंने एक ही बैठक में पूरी तरह लिख डाला। इंग्लैण्ड से दक्षिण अफ्रीका की समुद्री यात्रा के दौरान 13 नवम्बर 1909 से गांधी ने लिखना शुरू किया और ठीक दस दिन बाद 22 नवम्बर को उनका लेखन पूरा हो गया। उन्होंनें दायें और बायें दोनों हाथों से लिखा। पांडुलिपि में अंतिम रूप देते समय केवल 16 लाइन काटी गयीं और जहां तहां कुछ शब्द बदले गये। गांधी के विचार और उनके लेखन को गहराई से समझने वाले विश्वभर के बौद्धिक 'हिन्द स्वराज' को गांधी के वैचारिक वटवृक्ष का मूल बीज मानते हैं। यही एक पुस्तक है, जिसमें गांधी कोई राजनीतिक सिद्धांत प्रतिपादित करने के निकट पहुंचते हैं। बीसवीं सदी के पहले दशक में लिखी गयी यह एक अद्धितीय पुस्तक है जो पश्चिमी विचार, पश्चिमी सभ्यता और विकास के पश्चिमी प्रतिमान पर गम्भीर सवाल खड़े करती है। इस पुस्तक में गांधी ने पश्चिम से अपनी वैचारिक स्वतंत्रता की घोषणा की है।

मानव सभ्यता की राह में साध्य क्या हो और साधन क्या, यंत्र और विकास के बीच संतुलन और समन्वय के मानक क्या हों, धर्म का असली रूप क्या है तथा धर्म और राजनीति के बीच परस्पर सम्बंध क्या हो आदि जैसे सवालों के साथ साथ हिंसा, भूख, विकास की गैर बराबरी, नैतिकता और सरोकारों से पीछा छुड़ाती राजनीति, प्रकृति का भयंकर दोहन आदि जैसी वर्तमान समय की ज्वलंत समस्याओं का एक वैकल्पिक समाधान 'हिन्द स्वराज' में खोजा जा सकता है। इससे गांधी की जबर्दस्त दूरदर्शिता का पता चलता है कि उन्होंने इन समस्याओं को सौ साल पहले ही देख लिया था।

'हिन्द स्वराज' को कई दृष्टियों से देखा और विश्लेषित किया गया है। महान लेखक टॉलस्टॉय ने इसे भारत ही नहीं बल्कि पूरी मानवता के लिए सर्वोच्च महत्व की पुस्तक माना था तो दूसरी तरफ गांधी के राजनीतिक गुरू गोपाल कृष्ण गोखले ने कहा था कि यह पुस्तक जल्दी में लिखी गयी है और बाद में विचार करने के बाद खुद गांधी ही इस दर्शन को बदल देंगे। गांधी ने खुद बताया है कि उनके एक मित्र की राय थी कि यह एक मूर्ख आदमी की रचना हैं। इस तरह देश और दुनिया के बहुत लोगों ने जहां इस पुस्तक की प्रशंसा की थी वही इसकी आलोचना भी हुई थी। गांधी 'हिन्द स्वराज' की आलोचना से कभी विचलित नहीं हुए। 'हिन्द स्वराज' में व्यक्त विचारों के प्रति उनका अटूट विश्वास जीवनपर्यन्त बना रहा। 1927 में हिन्द स्वराज के हिन्दी अनुवाद

की प्रस्तावना में उन्होंने लिखा, 'यह पुस्तक मैंने 1909 में लिखी थी। 12 वर्ष के अनुभव के बाद भी मेरे विचार जैसे उस समय थे वैसे ही आज हैं। मैं आशा करता हूं कि पाठक मेरे इन विचारों को प्रयोग करके उनकी सिद्धता अथवा असिद्धता का निर्णय कर लेंगें''। इसी तरह, सितम्बर 1938 में अंग्रेजी मासिक 'आर्यन पाथ' के 'हिन्द स्वराज' अंक के लिए भेजे संदेश में उन्होंने कहा, ''यह पुस्तक मुझे फिर से लिखनी हो, तो कहीं–कहीं मैं उसकी भाषा बदलूंगा। लेकिन इसे लिखने के बाद जो तीस साल मैंने अनेक आंधियों में बिताये हैं, उनमें मुझे इस पुस्तक में बताये हुए विचारों में फेरबदल करने का कुछ भी कारण नहीं मिला। इतना ही नहीं 5 अक्टूबर 1945 को नेहरू को लिखे एक पत्र में गांधी ने कहा, "हिन्द स्वराज में मैंने जो लिखा है, उस राज पद्धति पर मैं बिल्कुल कायम हूं। यह सिर्फ कहने की बात नहीं है। लेकिन जो चीज मैंने 1909 के साल में लिखी है उसी चीज का सत्य मैंने अनुभव से आज तक पाया है। आखिर में मैं एक ही उसे मानने वाला रह जाऊं, उसका मुझे जरा भी दुख नहीं होगा, क्योंकि मैं जैसा सत्य पाता हूं, उसका मैं साक्षी बन सकता हूँ।''

यहां एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि 'हिन्द स्वराज' में व्यक्त विचारों की प्रासंगिकता को लेकर गांधी के मन में कभी कोई संदेह उत्पन्न नहीं हुआ बल्कि समय बीतने के साथ वे इन विचारों पर और दृढ़ होते गये। जीवन के अनुभवों और प्रयोगों ने इन विचारों की सत्यता को प्रमाणित किया था। उनका सम्पूर्ण कर्म और चिन्तन 'हिन्द स्वराज' में व्यक्त विचारों के ही इर्द-गिर्द घूमता रहा और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए चलाये जा रहे उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के दौरान वे उस स्वराज को पाने की लगातार कोशिश करते रहे जिसकी तस्वीर उन्होंने 'हिन्द स्वराज' में खींची थी। बावजूद इसके, 'हिन्द स्वराज' के खिलाफ शुरू से ही ऐसा माहौल बना दिया गया कि मानों इसमें वर्णित बातें यथार्थ से परे कल्पनालोक की हैं। अर्थात् 'हिन्द स्वराज' विशुद्ध यूटोपिया है। श्याम जी कृष्ण वर्मा और हिंसक क्रांति के दूसरे प्रणेताओं ने इसकी जर्बदस्त आलोचना की। श्रीपाद अमृत डांगे और एम.एन. रॉय जैसे भारतीय साम्यवादी विचारकों ने उसे गांधी की ईसाई पुण्यशीलता और वर्गसंघर्ष के नियमों से बिल्कुल अनजान कोरी मानवीयता की किताब कहा था। सब तो सब खुद नेहरू, जिन्हें गांधी ने अपना राजनीतिक वारिस घोषित किया था, वह भी 'हिन्द स्वराज' में व्यक्त विचारों से घोर असहमत थे। दरअसल, 'हिन्द स्वराज' के विरोध में वे सारे लोग थे जो पश्चिम से प्रभावित थे और भारत को भी पश्चिम जैसा बनाना चाहते थे। इस मुद्दे पर वामपंथियों और उदारवादियों की सोच एक समान थी। वस्तुतः उस समय के ज्यादातर विचारशील लोग 'हिन्द स्वराज' में पश्चिम की औद्योगिक सभ्यता और भारत के डॉक्टरों, वकीलों, रेलवे, अस्पतालों आदि की आलोचना से बिदक जाते थे। गांधी ने इन्हें भारत के मध्यवर्ग को गुलाम बनाये रखने के अंग्रेजी प्रयासों का सहयोगी बताया था और कहा था कि ये अंग्रेजों को भारत से भगा कर उनकी जगह उनके जैसा ही राज करके भारत को इंग्लिस्तान बना देंगे। गांधी को यह स्थिति स्वीकार्य नहीं थी। 'हिन्द स्वराज' में वे कहते हैं, ''यह तो आपने अच्छी तस्वीर खींची। इसका अर्थ यह हुआ कि हमें अंग्रेजी राज्य तो चाहिए पर अंग्रेज (शासक) नहीं चाहिए। आप बाघ का स्वभाव तो चाहते हैं और हिन्दुस्तान जब अंग्रेज बन जायेगा तब वह हिन्दुस्तान नहीं कहा जायेगा, लेकिन सच्चा इंग्लिस्तान कहा जायेगा। यह मेरी कल्पना का स्वराज्य नहीं हैं।''

नेहरू पश्चिम से उपजे भारतीय मध्यवर्ग की मानसिकता के उत्तम उदाहरण थे। उनके नेतृत्व में स्वतंत्र भारत की दशा और दिशा निर्धारित करते समय गांधी और गांधीवादी विचारों को लगभग किनारे कर दिया गया। उस समय के

परिदृश्य पर टिप्पणी करते हुए आधुनिक भारत के इतिहासकार सुमित सरकार ने सही कहा है कि, 'कांग्रेस की लड़ाई राज के खिलाफ रही थी। किन्तु अब स्वयं कांग्रेस ही धीरे-धीरे राज बनती जा रही थी। बिना किसी बड़े परिवर्तन के ब्रिटिश राज की सम्पूर्ण नौकरशाही एवं सैन्य व्यवस्था, 'स्वर्गिक' सिविल सेवा और अन्य सबकुछ को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया गया था। केवल गोरों का स्थान काले साहबों ने ले लिया था। 'स्पष्ट है स्वतंत्र भारत में गांधी की बातों को कोई महत्व नहीं दिया गया और देश की बेहतरी के लिए पश्चिमी मानकों को ही स्वीकार कर लिया गया। उसका दुष्परिणाम कुछ ही समय बाद दिखने लगा था और आज उसका भयावह रूप हमारे सामने है। यह सवाल काफी प्रमुखता से उठने लगा कि स्वातंत्र्योतर भारत में विकास का जो रास्ता अपनाया गया है वास्तव में उसने अपने बार-बार घोषित उद्देश्यों के विपरीत ही फल क्यों दिया हैं?

इसमें कोई दो राय नहीं कि नेहरू एक 'विजनरी नेता थे। वे भारत को एक सुदृढ़ जनतांत्रिक और खुशहाल राष्ट्र बनाना चाहते चाहते थें। इस दृष्टि से उनकी नीयत पर शक नहीं किया जा सकता। लेकिन दुर्भाग्य यह था कि उनका विजन पश्चिम से नियंत्रित था। वे यह नहीं देख पाये कि भारत का विकास यहां के स्थानीय संदर्भो, परम्पराओं, संस्कृति, सामाजिक संरचनाओं आदि को ध्यान में रख कर उनके अनुरूप ही हो सकता है। इस दृष्टि के अभाव के कारण पश्चिमी मॉडल को एक तरह से भरत के उपर थोप दिया गया और भारत के अनुकूल हिन्द स्वराज के माडल को बिलकुल किनारे छोड़ दिया गया।

इस तरह, स्वतंत्र भारत में 'हिन्द स्वराज' को अपनाये बिना ही उसे अप्रासंगिक घोषित कर दिया गया। 'हिन्द स्वराज' ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण गांधीवाद के साथ एक बहुत बड़ा अन्याय यह हुआ कि उसके अनुसार राजनीतिक आर्थिक व्यवस्था चलाने का प्रयास न के बराबर हुआ। भारत ही नहीं बल्कि दुनिया की किसी भी राजसत्ता ने गांधीवादी मॉडल को अपनाने की कोशिश नहीं की। पूंजीवादी मॉडल को अपनाया गया और उसमें भयंकर खामियां पायी गयीं। इसी तरह, मार्क्सवादी मॉडल को अपनाया गया और वह असफल हो गया। गांधीवादी मॉडल को तो अपनाया ही नहीं गया, इसलिए इसकी अप्रासंगिकता की बात करना बहुत बेमानी है।

जहां तक इतिहास और वर्तमान के अनुभवों का प्रश्न है वहां गांधीवाद का प्रयोग अत्यंत सफल रहा है। इसकी सबसे बड़ी मिसाल भारत का राष्ट्रीय आंदोलन है। उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष में गांधीवादी उपकरण ही सबसे अधिक कारगर रहा। इतनी विराट जनसंख्या ने संघर्ष के गांधीवादी तरीकों को अपनाया और अंततः सफलता भी प्राप्त की। विश्व के संदर्भ में देखें तो लम्बे समय तक चलने वाले दो बड़े आंदोलनों मार्टिन लूथर किंग जूनियर के नेतृत्व में अमेरिका में अश्वेतों का संघर्ष और दक्षिण अफ्रीका में नेल्सन मंडेला के संघर्ष के प्रेरणास्रोत गांधी ही थे। गांधीवादी रास्तों पर चल कर ही इन आंदोलनों ने अपने लक्ष्यों को प्राप्त किया। हिंसक संघर्षो की लगातार असफलता ने दुनिया के सामने कोई और विकल्प छोड़ा ही नहीं है। आज भारत ही नहीं बल्कि दुनिया के बहुत से समाजसेवी और चिन्तक जो संसार को सुंदर बनाने के संघर्ष में लगे हुए हैं, वे सभी किसी न किसी अर्थ में गांधी से जुड़ाव महसूस करते हैं।

जैसे-जैसे पश्चिमी औद्योगिक सभ्यता की सीमाएं उजागर होती गयीं विचारवान लोग गांधी और उनके हिन्द स्वराज पर लौट कर आते रहे। औद्योगिक सभ्यता के विकल्प को लेकर

जब भी बातें हुईं लोग गांधी के पास लौटे। वर्तमान में भी यही हो रहा है। औद्योगिक सभ्यता के अंतर्विरोध और बुराइयां जैसे-जैसे विकराल रूप धारण कर रही हैं। लोगों का ध्यान गांधी की तरफ जा रहा है। दुनिया में हर तरफ बढ़ती हिंसा और प्राकृतिक संसाधनों के अधाधुंध शोषण से पर्यावरण और मानवीय जीवन पर आ रहे संकट ने दुनियाभर के चिन्तकों का ध्यान हिन्द स्वराज की तरफ खींचा है क्योंकि यह पुस्तक 'सतत् विकास (सस्टनेबल डेवलपमेण्ट) की संकल्पना को सर्वाधिक प्रामाणिक रूप से रेखांकित करती है। मानवता की इन चिन्ताओं से जुड़ी होने के कारण 'हिन्द स्वराज' एक 'ग्लोबल टेक्ट' बन गया है। स्थानीयता से अपनी सार्वभौमिकता का अनूठा उदाहरण 'हिन्द स्वराज' है। इसलिए, पिछले दो तीन दशकों से 'हिन्द स्वराज' को पश्चिमी औद्योगिक सभ्यता की प्रमाणिक भारतीय आलोचना से कहीं अधिक व्यापक संदर्भ में देखा जा रहा है। इसका एक वैश्विक स्वरूप उभर कर सामने आ रहा है।

दरअसल, गांधी एक ही साथ सार्वभौम और स्थानीय दोनों थे। यही कारण है कि वे एक मौलिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन कर पाये। 'हिन्द स्वराज' में उन्होंने भारत की गुलामी के कारणों को लेकर ऐसी ही मौलिकता का परिचय दिया है। उनके अनुसार दुनिया का कोई भी देश तभी किसी और देश द्वारा पराजित और पराधीन किया जा सकता है जब वह देश अपनी विरासत और परम्परा के श्रेष्ठ तत्वों से विचलित होकर किसी दूसरी संस्कृति के विधि विधान और भौतिक ढांचे के प्रति आकर्षित हो। इसीलिए उन्होंने भारत की आजादी के लिए अंग्रेजियत और पश्चिमी सभ्यता के प्रति देश के व्यापक हिस्से में व्याप्त आकर्षण को दूर करने पर सर्वाधिक जोर दिया। इसके लिए उन्होंने 'असहयोग' और 'स्वदेशी' पर बहुत बल दिया।

बहुत सारे लोग यह समझते हैं कि स्वदेशी का विचार प्रगतिशील न होकर प्रतिगामी है और मध्य युग की तरफ ले जाने वाला है। लेकिन सच्चाई ठीक इससे उलट है। गांधी की स्वदेशी की अवधारणा कहीं से भी विश्वविरोधी नहीं है और न ही उसमें संकीर्णता है। वे कहते थे कि मेरी भौतिक जरूरतों के लिए मेरा गांव मेरी दुनिया है और मेरी आध्यात्मिक जरूरतों के लिए समूची दुनिया मेरा गांव है। उनके स्वदेशी का अर्थ अपने पड़ोस से उत्पन्न संसाधनों के आधार पर जीवन शैली बनाने की रणनीति है। लेकिन पश्चिम के मोहपाश में बंधे लोगों और उनके बुद्धिजीवियों ने 'स्वदेशी' की अवधारणा को पूरी दुनिया से कट कर गांव में ही बने रहने की वकालत के रूप में प्रचारित किया। यह दुष्प्रचार इसके बावजूद चलता रहा कि अमेरिकी पत्रकार लुईफिशर, फ्रांसिसी साहित्यकार रोम्यां रोलां तथा भारत में रवीन्द्रनाथ टैगोर को दिये एक जवाब में उन्होंने कहा था, ''आजाद हवा में मैं भी उतना ही विश्वास रखता हूं जितना कि वह महान कवि। मैं नहीं चाहता कि मेरे घर के चारों तरफ दीवारें हों और खिड़कियां बंद रहें। मैं चाहता हूं कि दुनियाभर की संस्कृतियां जितना हो सके मुक्त भाव से मेरे आंगन में फलें फूलें। लेकिन मैं यह नहीं स्वीकार करूंगा कि कोई मेरे पांवों को ही उखाड़ दें। पश्चिमी भूमंडलीकरण के बरअक्स स्थानीयता और अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को न भूलने वाली गांधी की यह वैश्विक समझ हमारे लिए सर्वाधिक कारगर है।

आज की दुनिया में हिंसा का सवाल एक बड़ा सवाल है। एक तरह से यह तथाकथित आधुनिक सभ्यता हिंसा की चपेट में है। भय और हिंसा इस सभ्यता के मूल में है। लेकिन यह ध्यान रखने की जरूरत है कि हिंसा का विकल्प हिंसा नहीं हो सकता और न ही हिंसा को हिंसा के सहारे पराजित किया जा सकता है। गांधी ने मानवता को अहिंसा का पाठ पढ़ाया । उन्होंने राज्य की हिंसा और जनता की हिंसा को अलग न करते हुए हिंसा मात्र को

त्याज्य माना। दरअसल, गांधी ने बहुत पहले ही यह देख लिया था कि हिंसा से किसी समस्या का स्थायी समाधान नहीं हो सकता और हिंसा से प्राप्त की गयी सत्ता का चरित्र भी अंततः हिंसक ही होगा। कम्युनिस्ट शासकों के दौरान हुई भारी हिंसा ने गांधी की बात को सही साबित किया है। वस्तुतः हिंसा के साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि अगर हिंसा को किसी भी हालत में एक बार वैध ठहरा दिया गया तो यह तय करना बहुत मुश्किल हो जायेगा कि कौन हिंसा अच्छी है और कौन बुरी? गांधी ने हिंसा का जवाब 'सत्याग्रह' और 'आत्मबल' से देने की बात कही। उन्होंने 'हिन्द स्वराज' में लिखा ''शरीर बल का उपयोग करना, गोला बारूद काम में लाना हमारे सत्याग्रह के कानून के खिलाफ है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि हमें जो पसंद है वह दूसरे आदमी से हम (जबरन) करवाना चाहते हैं। अगर यह सही हो तो फिर वह सामने वाला आदमी भी अपनी पसंद का काम हमसे करवाने के लिए हम पर गोला बारूद चलाने का हकदार हैं।''

आज हिंसक संघर्ष का कोई भविष्य नहीं है। राज्य के ताकत की तुलना में किसी समूह या संगठन की ताकत निश्चय ही कम रहेगी। इसलिए,राज्य को ताकत से परास्त नहीं किया जा सकता। आज राज्य के विरूद्ध सर्वाधिक ताकतवर संगठन लिट्टे भी परास्त हो चुका है। आम जनता के लिए हिंसा का मार्ग एक कारगर मार्ग कभी नहीं हो सकता। हिंसक गतिविधि से राज्य को असीमित बल प्रयोग करने का बहाना मिल जाता है। हिंसा के मार्ग को पूरी तरह नकारते हुए गांधी ने भगत सिंह की फांसी पर अफसोस व्यक्त करते हुए कहा था, ''हम उनका अनुसरण नहीं कर सकते। हमारी धरती पर लाखों लोग बेसहारा और लाचार लोग हैं। अगर हमने न्याय को प्राप्त करने के लिए हत्या को चुन लिया तो स्थिति बहुत खतरनाक हो जायेगी और हमारी गरीब जनता अत्याचार का शिकार होगी।

गांधी ने प्रत्येक चीज़ पर सोचने की एक अलग दृष्टि दी है जो पश्चिम से बुनियादी रूप से भिन्न है। विकल्प के तौर पर मार्क्सवाद के असफल हो जाने के बाद गांधी और गांधीवादी चिन्तन की तरफ गम्भीरता से सोचने की जरूरत आ पड़ी है। वैसे भी, मार्क्सवाद पूंजीवाद का विकल्प न होकर उसका दोष सुधार अधिक है। समाजवादी व्यवस्थाओं ने भी उन्हीं चीजों को विकास की कसौटी माना जिन्हें पूंजीवाद मानता था। इस सोच के मूल में मार्क्स की वह धारणा काम कर रही थी कि तकनीक का विकास एक स्वायत्त प्रक्रिया है। लेकिन अब तक के तकनीकी विकास और उसके प्रभावों को देख कर यह बात साफ हो जाती है कि तकनीक के विकास की प्रक्रिया स्वायत्त नहीं है बल्कि वह समाज की या वर्ग विशेष की सुविधा से निर्धारित होती है। तकनीक का भी एक अपना वर्गचरित्र होता है। इसी कारण तकनीक के विकास को कसौटी मान कर चलने वाली समाजवादी व्यवस्थाएं एक एक कर पूंजीवादी मूल्यों और व्यवस्था को कबूल करने लगीं। कुल मिला कर हुआ यह कि पूंजीवाद की जमीन पर ही समाजवाद की इमारत खड़ी करने की कोशिश हमेशा से होती रही और इस प्रयास में समाजवाद को हमेशा मुंह की खानी पड़ी। बीसवीं सदी इस बात की साक्षी रही है।

लेकिन विश्व के लिए इन दोनों विचारधाराओं से अलग एक तीसरा परिप्रेक्ष्य भी है जो कि गांधी का है। यह अलग बात है कि दुनिया को देखने और समझने की एक वर्चस्वशाली अवधारणा बन गयी है जिसे पूंजीवाद और साम्यवाद के नाम से जाना जाता है। दरअसल, जिस विचार की सत्ता होती है वही विचार प्रमुखता पाता है। अधिसंख्य देशों में पूंजीवादी सत्ता और कुछ देशों में साम्यवादी सत्ता रही है। इसलिए दुनिया में इन्हीं दो दृष्टियों को प्रमुख मानने की प्रवृत्ति रही है। यहां यह स्पष्ट कर देना फिर जरूरी है कि इन दोनों अवधारणाओं में कोई गुणात्मक

भेद नहीं है। और ये दोनों मूलतः यूरोप केन्द्रित अवधारणाएं हैं। इनके बरअक्स गांधी ने एक वैकल्पिक मॉडल दिया जो सच्चे अर्थों में पूंजीवाद का प्रतिपक्ष है। गांधी का मुख्य सरोकार मनुष्य के नैतिक जीवन से था। उन्होंने भौतिक विकास की जगह मनुष्य के नैतिक और मानसिक विकास को अधिक तरजीह दी। इसीलिए उनके नेतृत्व में चलाये गये स्वाधीनता आंदोलन का मुख्य उद्देश्य भारत को नैतिक पुनरूत्थान की ओर ले जाना था। गांधीवादी चिन्तन के इस पक्ष को दूसरे दृष्टिकोण से समझने पर व्यक्ति हमेशा गलत निष्कर्ष पर ही पहुंचेगा। के. दामोदरन भी एक ऐसे ही गलत निष्कर्ष पर पहुंचते हैं जब वे यह कहते हैं कि ''उनका दार्शनिक विश्व दृष्टिकोण तथा उनके बहुत से विचार और उक्तियां अवैज्ञानिक और यहां तक कि पीछे की ओर घसीटने वाली थी। ''वस्तुतः किसी भी विचारधारा या चिन्तन को उसके ही उपकरणों से समझा जा सकता है, अन्य के उपकरणों से नहीं।

उदारवाद (पूंजीवाद) और मार्क्सवाद की तरह गांधी इस बात के कायल नहीं हैं कि धर्म और विज्ञान क्रमशः मध्ययुगीनता और आधुनिकता के विभाजक बिन्दु हैं। मनुष्य की मनुष्यता के निर्माण में धार्मिक प्रेरणाएं होती हैं, इस बात को वे स्वीकारते हैं। वे धर्म को नकार कर नहीं चलते। उन्होंने खुद अपने ऊपर कई धर्मो के प्रभाव को स्वीकार किया है। लेकिन ईश्वर और धर्म का उनके लिए विशिष्ट अर्थ है। सत्य को ईश्वर मानना और सत्य को किसी बाहरी धर्म या विचारधारा में न मान कर मनुष्य के भीतर मानना गांधी के चिन्तन की विशेषता है। गांधी की आधारभूत मान्यता है कि मनुष्य स्वभावतः अच्छा होता है और किसी व्यवस्था के द्वारा सत्य या अच्छाई को पैदा नहीं किया जा सकता। यहां यह ध्यान देना आवश्यक है कि वह चिन्तन भी आधुनिक है जो बाहरी कारकों की जगह मनुष्य को केन्द्र में रख कर अपनी विचार श्रेणियां बनाता है। गांधी मनुष्य और मनुष्यता को केन्द्र में रखते हैं।

चूंकि किसी सत्ता या व्यवस्था के द्वारा मनुष्यता या सत्य को पैदा नहीं किया जा सकता इसलिए गांधी किसी सत्ता या व्यवस्था को बदलने की जगह मनुष्य को बदलने पर सर्वाधिक जोर देते हैं। इतिहास में अब तक का अनुभव यही बताता है कि मनुष्य को बदले बिना व्यवस्था को बदल देने से न तो कोई सुखद परिणाम सामने आया और न ही कोई गुणात्मक परिवर्तन परिलक्षित हुआ। मानवता की बेहतरी के नाम पर हुई अब तक की तमाम क्रांतियों (बुर्जुआ और सर्वहारा दोनों) की असफलता के मूल में यही बात है कि इन सबने मनुष्य की जगह व्यवस्था परिवर्तन को अपना लक्ष्य बनाते हुए पूरा ध्यान बाहरी कारकों पर ही केन्द्रित रखा।

दरअसल, गांधी ने भौतिक प्रगति की सीमाओं और मूल में शोषण की अंतर्वस्तु को पहले ही भांप लिया था। इसलिए वे भारत की उन्नति के लिए पश्चिमी सभ्यता के मानकों को गैरजरूरी मानते थे और उसे उस सांचे में ढालने के जबर्दस्त विरोधी थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि पश्चिमी सभ्यता मनुष्य को उपभोक्तावाद का रास्ता दिखा कर नैतिक पतन की ओर ले जायेगी जबकि नैतिक उत्थान का रास्ता आत्मसंयम और त्याग भावना की मांग करता है। 1927 ई0 में यंग इंडिया के अंतर्गत उन्होंन स्पष्ट लिखा था कि, मैं यह नहीं मानता कि इच्छाओं को बढ़ाने या उनकी पूर्ति के साधन जुटाने से संसार अपने लक्ष्य की ओर एक कदम भी बढ़ पायेगा। भौतिक इच्छाओं को बढ़ाने और उनकी तृप्ति के लिए धरती का कोना कोना छान मारने की जो अंधी दौड़ चल रही है, वह मुझे बिल्कुल पसंद नहीं।

अतः गांधी विकास की ऐसी किसी भी अवधारणा के विरूद्ध थे जिसका लक्ष्य भौतिक इच्छाओं को बढ़ाना और उनकी पूर्ति का उपाय ढूंढना हो। गांधी यह देख रहे थे कि विकास की

इस भौतिकवादी अवधारणा ने ही उपनिवेशवाद को जन्म दिया। वे उपनिवेशवाद को पश्चिमी सभ्यता के अनिवार्य उत्पाद के रूप में देखते थे और उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि इस भौतिकवादी सभ्यता को जो भी देश अपनायेगा उसे अनिवार्यतः अपनी जरूरतों के लिए उपनिवेशवादी होना पड़ेगा।

इन सारी चीजों का गहराई से विश्लेषण करने के बाद गांधी ने दुनिया को जो मार्ग दिखाया वह मनुष्य के स्वभाव और चरित्र को नये सांचे में ढालने पर बल देता है। उन्होंने शरीर श्रम के सिद्धान्त के अंतर्गत यह शिक्षा दी कि प्रत्येक मनुष्य को उपयुक्त शारीरिक श्रम करके अपने उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन में योग देना चाहिए। इससे न केवल लाखों करोड़ों लोगों की आवश्यकताएं पूरी करने में सहायता मिलेगी बल्कि समाज में श्रम की गरिमा भी बढ़ेगी। उन्होंने हर तरह के श्रम को बराबर महत्व देने की वकालत की ताकि ऊंच-नीच आधारित किसी भी तरह की कोई श्रेणीबद्ध संरचना न बन पाये और मानवमात्र को महत्व मिले। गांधी ने श्रम को सारे सामाजिक कार्यक्रम की कुंजी मानते हुए ऐसी अर्थव्यवस्था का समर्थन किया जिसमें विशाल जनसंख्या को उपयुक्त श्रम में लगाया जा सके। इसके लिए उन्होंने तकनीक प्रधान उद्योगों के मुकाबले श्रमप्रधान उद्योगों की वरीयता दी। उन्होंने पुंज उत्पादन (मॉस प्रोडक्शन) के बजाय जनपुंज द्वारा उत्पादन (प्रोडक्शन बाय द मासेज) की प्रणाली को उचित ठहराया। वस्तुतः गांधी ने अधिक आबादी वाले देशों में पश्चिमी तकनीक की मानव विरोधी भूमिका और वर्गीय चरित्र को स्पष्टतः देख लिया था।

आज 21वीं सदी में वे सारे के सारे प्रश्न अधिक विकराल एवं भयावह रूप लेकर हमारे सामने उपस्थित हैं जिन्हें आज से सौ साल पहले गांधी ने उठाया था। गांधी ने उसी समय

विकराल एवं भयावह रूप लेकर हमारे सामने उपस्थित हैं जिन्हें आज से सौ साल पहले गांधी ने उठाया था। गांधी ने उसी समय इन प्रश्नों के माकूल और मौलिक उत्तर भी दिये। लेकिन हमने अब तक उस पर समुचित ध्यान नहीं दिया। मानवता के भविष्य रक्षा के लिए गांधी के सुझाये रास्ते सर्वाधिक उपयुक्त हैं। उन पर जितना जल्दी अमल हो सके उतना ही अच्छा होगा। आज गांधी को लेकर ही नये प्रयोगों की जरूरत है। हिन्द स्वराज इस दृष्टि से अनिवार्य संदर्भ हो सकता है।

बुन्देली लोक साहित्य और महात्मा गाँधी

• डॉ0 बहादुर सिंह परमार

महात्मा गाँधी ने राष्ट्रीय राजनीति में 1915 में प्रवेश किया और सत्याग्रह को अपना माध्यम बनाकर पूरे देश में अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष किया। हिन्दुस्तान के साथ बुन्देलखण्ड अंचल में भी गाँधी जी का प्रभाव पड़ा और यहाँ 1918 ई0 में सत्याग्रह प्रारंभ हो गए थे। 1920 ई0 में मऊरानीपुर के नजारी (लाल) बाजार में सत्याग्रह हुआ। 1921 ई0 में राठ और होशंगाबाद में असहयोग आंदोलन, 1920 ई0 में रतौना (सागर) और दमोह में कसाई खाने के विरूद्ध आंदोलन, 1925 ई0 में जबलपुर झंडा सत्याग्रह, 1930 ई0 में नमक आन्दोलन पूरे बुन्देलखंड में 1930-1931 में जंगल सत्याग्रह, 1931 ई0 में चरण पादुका आंदोलन छतरपुर, 1932 ई0 लगान बंदी आन्दोलन बीरा तह0 राठ हमीरपुर, 1937 व 1939 में झंग सत्याग्रह टीकमगढ़ में 1942 ई0 उत्तरदायी शासन हेतु रियासतों में आन्दोलन हुए। ये समस्त आन्दोलन गाँधी जी के प्रभाव से हुए। इस दौर में बुन्देली लोक काव्य पर गाँधी जी का सीधा प्रभाव पड़ा। लोक रचनाकारों ने स्थानीय बुंदेली भाषा में रचनाएं रच कर लोक जागरण का व्यापक प्रभावी कार्य किया। गाँधी जी का सत्याग्रह जन-जन में व्याप्त हो गया। अस्पृश्यता के विरूद्ध भाव, अहिंसा तथा राष्ट्रीय जागरण बुन्देली लोक काव्य में प्रचुरता से लिखा गया। फाग, सैर तथा लावनी ख्याल लोक विधाओं में आंदोलन के स्वर के साथ गाँधी जी की प्रशस्ति गाई गयी। गाँधी जी को गुरू, गुसाई जैसी उपमाओं से विभूषित करते हुए लोक कवि महेश एक फाग लिखते हैं।

गाँधी तुम हो गुरू गुसैयॉ, पखँ तुम्हारी पैयाँ।
जगा दए भारत के वासी, दे दई सत्य धनैयाँ।
तारे पूत-अधूत विधरकी, उड़ी छूत की छैयाँ।
कहत' महेश' कलेस नसा के पाली दोन चिरैंयाँ।

लोककवि गाँधी जी के चरणों की वंदना इसलिए कर रहा है कि उन्होंने देशवासियों को जगाकर सत्य से परिचित करा दिया है और छुआछूत से पीड़ित अछूत लोगों को संरक्षण देकर गरीबों का लालन-पालन करके कष्टों का नाश किया है। गाँधी जी ने खादी का प्रयोग प्रोत्साहित किया। स्वंय चरखा चलाकर, सूत कात कर वस्त्रों का निर्माण करने के लिए जन-जन को संदेश दिया। चरखा आंदोलन में एक प्रतीक बन गया। गाँधी जी के सत्याग्रह से पूरा अंग्रेजी प्रशासन परेशान होकर जन विरोधी नीतियों को वापस लेने को विवश हो रहा था। प्रशासन के अंग तहसीलदार और पटवारी मजबूरी में जनता के पक्ष में कार्य करने को विवश हो रहे थे। बुन्देलखंड में 1920 के स्वदेशी आंदोलन से 1947 तक एक लोकगीत लोकप्रिय रहा जो गाँव-गाँव में गाया जाता रहा। इसका रचनाकार अज्ञात है। इसमें कांग्रेस वालंटियर बनने के लिए लगने वाली होड़ को बताने के साथ गाँधी जी को दूल्हा व सरकार को दुल्हन के रूप में वर्णित किया गया है। आप देखें -

देखों टूटै न चरखा कौतार, चरखवा चालू रहे।
गाँधी महात्मा दूल्हा बने हैं, दुलहिन बनी सरकार। चरखवा.....
सबरे वालेन्टियर बने बराती, नउआ बनो थानेदार। चरखवा....
सब पटवारी गारी गावै, पूड़ी बेलैं तहसीलदार। चरखवा....
गांधी महात्मा नेंग में मचले, दायजें में माँगे सुराग। चरखवा..
ठाँड़ी गवर्नमेंट बिनती सुनावै, जीजा गोंने में दैवी सुराग। चरखवा..

बुन्देलखण्ड दोहरी गुलामी का शिकार रहा। स्थानीय स्तर पर रियासतों में राजाओं का शासन था तथा ये समस्त राजा अंग्रेजों के गुलाम थे। जिससे जनता बहुत परेशान, फटेहाल तथा त्रस्त थी। स्थानीय राजा जबरिया लगान वसूली के साथ कई तरह के कर बेरहमी से वसूलते थे। इसके विरूद्ध जन आक्रोश था। यह जन आक्रोश गाँधी जी का नेतृत्व पाकर विभिन्न आंदोलनों में

प्रकट हुआ। लोक ने राजाओं और सामंती ताकतों के खिलाफ खुलकर बीड़ा उठाया था जिन रियासतों के राजाओं ने अंग्रेजों का साथ दिया था, उनका खुला विरोध हुआ था। लोक कवियों ने अत्याचारियों को नहीं छोड़ा चाहे वह देशी हो या विदेशी। उसने घोषणा की कि राजा अंग्रेजों के गुलाम हैं और हम उनके गुलाम है। एक गीत की कुछ पंक्तियाँ देखें।

बुन्देलखण्ड की जनता रोबै, भये राजा अत्याचारी।
अंग्रेज के गुलाम राजा, तिनके हम गुलामी भारी।
बुन्देलखण्ड के गाँडन-गाँडन, फेरे दोहेरो पिटवाओ।
जो सुराज कौ नाम तोवगे, तो हम कीला ढुकवाओ।

महात्मा गांधी द्वारा चरखा चलाकर खादी को प्रोत्साहित किया गया। इसका प्रचार-प्रसार बुन्देलखण्ड में भी हुआ। बुन्देलखंड में भी नारी-शक्ति ने गाँधी जी के विचारों से प्रभावित होकर आजादी की लड़ाई में भाग लिया था। लोक कवियों ने अपनी रचनाओं में खादी और चरखे की महिमा पर कई रचनाएं बुन्देलखण्ड में रचीं। विदेशी वस्त्रों को त्याग कर खादी की मोटी धोती पहनने का आवाह्न करते हुए नायिका एक अपनी सखी को सीख देती है। इसी भाव का गीत लक्ष्मीप्रसाद रमा ने लिखा है।

तुम चरखा बहिन चलाओ की, तो सुधरे दशा तुम्हारी।
खादी की धोती बुनवा लो, त्याग दो गुलसारी। तुम चरखा ....
खादी ही की सुंदर चोली, कुरती सुभग प्यारी। तुख चरखा ....
वसन विदेसी तज दो सबही, तब तुम्हरी हुशयारी। तुम चरखा ..
रहै यहाँ की यहीं सखी री, अपनी सम्पत्ति सारी। तुम चरखा ....
भारत का दुख दारिद नासै, होय सभी सुखकारी। तुम चरखा...
तुमरे शुभ करमों से बहनों दुःख दूर हो भारी। तुम चरखा .....
जग में तुम कहलाव लक्ष्मी, देशभक्त की नारी। तुम चरखा .....

बुन्देली लोक कवियों ने देश प्रेम, मातृभूमि बुंदेलखण्ड प्रेम के साथ संघर्ष की ललकार, खादी या स्वदेशी के प्रचार-प्रसार, अतीत की वीरतापरक घटनाओं का वर्णन तथा गांधी जी का यशोगान से ओत प्रोत रचनाएं लिखी। ऐसी ही रचनाएँ देखिए-

(1) भैया अब सुराज के लानपें, तन-मन से लग जानें।
द्विज खुमान अब पराधीनता से नातों ना रानें।

(2) सब कोउ गाढ़ा पैरो भाई, जासों होइ भलाई।
घर-घर राँटा चरखी घर लेव बनवा लेव नटाई
सौकत अली और गान्धी जू ने, सब्खौ दओ जगाई।
नवाबी ढीली परी आसफ खाँ की,
दुरगा की उठी तलवार।
जात पाँत को भेद भुलाके, सबसों हिलमिल रौवे।
कैये एक न कमऊँ कउ सों, चाय चार सुन तौये।
बापू कहीं स्थाम त मन सों, हिंसा दूर भगैयें।

महात्मा गाँधी लोक में गहरे से व्याप्त हो गए थे। बापू के सत्य और अहिंसा के सिद्धांत सत्याग्रह पर करोड़ों भारतवासी उनके साथ थे। उन्होंने राजनैतिक जीवन में धर्म और आध्यात्म का समावेश कर नैतिक बल पर जोर दिया था। वे चरित्र की शुद्धता पर जोर देते थे जिससे लोक में उनका व्यापक प्रभाव था। लोक महापुरूषों को अपने ही नजरिये से देखता व परखता है। बुन्देलखण्ड में भी महात्मा गाँधी को अवतारी महापुरूष मानकर कहा गया कि वे भारत माता पर किये जा रहे अन्याय व अत्याचार को बिना हथियार समाप्त करने आए महापुरूष हैं। उन्हें विष्णु के एक अवतार से जोड़ते हुए एक लोकगीत दृष्टव्य है :-

गाँधी जू जग में प्रकट भये, पृथ्वी का मगर उतारन को। श्री राम की माता कौशल्या हैं, श्री किशन की माता जसोदा हैं। श्री गाँधी

की माता भारत है, पृथ्वी का भार उतारन कौ।

बापू के आत्मबल की चर्चा लोक कवियों ने की है। बुन्देलखण्ड के कवि कहते है कि दुर्बल काया वाले बापू का आत्मबल सारी दुनिया जानती है। उन्होंने परमार्थ हेतु अपना घर छोड़ा है। वे लंगोटी लगाकर देश-विदेश घूम रहे हैं। बापू ने वस्त्र इसलिए त्याग दिए थे जब तक सभी भारतवासियों के तन पर कपड़े नहीं होगें तब तक हमें पूर्ण वस्त्र धारण करने का अधिकार नहीं है। उन्होंने बिना हथियारों के अहिंसा के आधार पर अंग्रेजी शासन के विरूद्ध संघर्ष किया। इस सम्बन्ध में एक चौकडियाँ फाग का उदाहरण देखें -

बापू हते बड़े बजधारी, जानत दुनिया सारी।
पर स्वास्थ के लाने जिनने, घोड़े खादी धारी।
बिन हथियारन लटी लराई, कर गये देस पुरवादी।

गाँधी जी के विचारों से प्रभावित होकर छतरपुर जिले के हीरा सिंह तथा राम सहौय तिवारी के नेतृत्व 19 जनवरी 1931 को उर्मिल गडी के किनारे सिंहपुर गाँव के चरण पाहुरा के आस-पास के हजारों लोग बुड़की मकर संक्राति मेला के अवसर पर स्थानीय रियासतों के करों के विरोध में एक सभा कर रहे थे जिस पर नौगांव में रह रहे अंग्रेजी पालिटीकल एजेंट फिशर के निर्देश पर सेना ने घेर कर गोली चालई थी जिसमें अनेक लोग शहीद हुए है जबकि वास्तविक संख्या कहीं अधिक रही है। इस गोलीकांड को बुंदेलखण्ड का जलियावाला हत्याकांड माना गया। इस आंदोलन का अँचल में व्यापक प्रभाव पड़ा। लोक कवियों ने लोक विधाओं में इस पर रचनाएँ लिखी। जनकवि उमा शंकर बरानियाँ उमा ने राई कहखा में यह रचना रची जो घटना को व्यक्त करती है।

बुड़की दै लेओ यार, जैसी सुन्दर लाल बनियाँ,
मोसें देखो न जाय, बंदरा विलायत बालो।
गोरा ले लिये पिराँन, उर्मिल पै मशीन गन घालकें।
दइया लागो गुहार, लूटो गुड़ानो फिरंगिया।
भपरे न जाय, गलियन में डोले फिरंगी,
भीलन पै भील, मारे दुनाली राम सी।
उमाशंकर बताय, बल्देव कि राती मालये,
पंडित राम सहाँय, गरजे फिरंगी के सामने।,
शहजादे सपूत, हमको सिखाई स्वतंत्रता,
हमें लेने स्वराज, चाहे गरे लगै फोंसी।
सन् इफ्तीस की बात, उर्मल रकत से बह गई
जब हूहै स्वराज, उर्मल दूध से बै है।

इस घटना के बाद बुन्देलखण्ड की जनता में गाँधी के प्रति अनुराग और फिरंगियों के प्रति नफरत का भाव मिला। बुन्देली लोक कवियों ने गाँधी जी को स्वराज्य लाने का अवतारी पुरूष माना है। जो भी मानव अपने सत्कर्मो से लोकप्रिय हो जाता है, उसे लोक अपनी विशिष्ट दृष्टि से देखता है। बुन्देलखण्ड में गाँधी को भी विशिष्ट महामानव माना गया, इसी परम्परा में वीर हरदौल अपने प्रणोत्सर्ग करके लोकदेवता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इसी कड़ी में बापू को देवता माना गया कि बिना अस्त्र लिए ऐसे अन्यायी फिरंगियों से संघर्ष किया जिनका राज्य पूरी दुनिया में था, जो बहुत शक्तिशाली था, फिर भी गाँधी ने सुराज लिया। एक चौकड़िया फाग देखें-

जब-जब एक राशि मिल राजे, दुश्मन स्रोत परानै।
रामचन्द्र ने रावण मारो, निसचर सहित समौन।।
कृष्ण चंद ने कंस पछारो, द्विज देवन के काजै।
घोर दृष्ट से बिन असि मथुरा, गाँधी तोत सुराजै।।

गाँधी जी ने विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार के साथ स्वदेशी उत्पादन को प्रोत्साहन करने के साथ सामाजिक समरसता पर जोर दिया था। वे कहते थे कि हम आपस में मिल

जुल कर रहें, प्रेम करें, छुआछूत त्यागें, अपना काम स्वयं करें। खादी हेतु सूत कातें, देसी कपड़े पहनें, देसी वस्तुओं का उपयोग करें। विदेशी मदिरा व बिस्कुट का सेवन न करें इसी भावना को बुन्देली लोक कवि खुमान इस तरह व्यक्त करते हैं-

भैया अब सुराज के लानें, तन-मन से लग जानें।
करौ फैसला घर अपने में, ना जइयों कोऊ थानें।
बिस्कुट और बरांडी छोड़ो, सभा लठारा खानें।
द्विज खुमान पराधीनता से अब ना तौ रानें।

सन् 1942 में गाँधी जी ने अंग्रेजों के विरूद्ध भारत छोड़ो आंदोलन शुरू किया जिसका समर्थन बुन्देलखण्ड के जन-जन ने किया। इसका व्यापक प्रभाव यहां पड़ा। बुन्देलखण्ड में रह रहे बनारसी दास, लाला राम वाजपेयी ने टीकमगढ़ जिले में, पं0 रामसहाय तिवारी ने छतरपुर जिले में, दीवान शत्रुधन सिंह के नेतृत्व में हमीरपुर जिले में भारत छोड़ो आन्दोलन तेजी से सक्रिय हुआ। प्रजा मंडलों तथा कांग्रेस कमेटियों ने इसे गति दी इस सबका प्रभाव बुन्देली जन मानस पर पड़ा। बुन्देली लोक साहित्य में भी लोक कवियों ने इस पर अपनी कलम चलाई। इस आन्दोलन से अंग्रेज घबड़ा गए और उन्होंने भारत को स्वतंत्र करने की घोषणा की। 1942 के स्वतंत्रता आंदोलन पर केन्द्रित दो फागें देखें -

(1) बाजी भारत की रन मेरी सुन सनू व्यालिस केरी।
क्रांति दल की धूम मची ती, बलिया में जिनके री।
दुफतें इक हते भट बांके, तरूनाई रंग रंगेरी।
दहल उठी अंग्रेजी मथुरा, देख फौज इन केरी।

(2) भारत छोड़ो को प्रण ढानों, फिर ना पांव समानों।
दिल्ली छोड़ भगों लन्दन खां, जेई शब्द सुनानो।
भगे जात अंग्रेज रात उठ, ऐसो भूत समानो।
सैतालिस पन्द्रह अगस्त में, भारत भाग जगानों।
लाल किले के ऊपर मथुरा, विजयकेतु फहरानो।

पन्द्रह अगस्त सन् उन्नीस सौ सैंतालीस को वह क्षण आ गया जब महात्मा गाँधी के नेतृत्व में लड़ी गई आजादी की लड़ाई का अन्त हुआ और देश स्वतंत्र हो गया। देश में स्वराज्य का सपना साकार हुआ। पूरे देश में प्रसन्नता के वातावरण में प्रभात फेरियाँ रैलियाँ निकाली गई। जन-जन प्रमुदित व उल्लिसित था। बुन्देलखण्ड का जन मन भी खुश था। यहाँ के लोक कवियों ने भी आजादी प्राप्ति पर गीत लिखे। एक लोकगीत बहुत लोकप्रिय हुआ, उसकी कुछ पंक्तियाँ देखिए-

आज दिन हो गओ देस सुतंत्र
एक लँगोटी वाले बाबा का पुर राओतो जौ मंत्र
जिनके राज न सूरज डूबे, झूई भये तिनके मनसूबे
बिन तकरार बिना हथयारन, भयों शर को अंत।

आजादी मिलने के बाद देश में विभाजन के कारण भड़की सांप्रदायिक हिंसा ने खुशियों को कम किया। हजारों लाखों लोग भारत से पाकिस्तान और पाकिस्तान से भारत आने में परेशान हुए। जो सोचा न था, यह सब हुआ। गाँधी जी दुखी हुए, उन्होंने सत्याग्रह किया। किन्तु काल को कुछ और ही स्वीकार था। गाँधी जी की हत्या 30 जनवरी 1948 को बिड़ला मंदिर में कर दी गई जिसका प्रभाव पूरे देश के साथ बुन्देली जन मानस पर पड़ा। बुन्देली कलम में भी लोककवि गा उठा।

(1) बापू तुम नैनन के तारे, रहे प्राण के प्यारे।
भारत के थे हिमगिर रक्षक, खम्भा अटल सहारे।
निरधन के धन हरिजन के मन, भूतल के उजयारे।
खेत सिंह थे हीरा जग में, वे अनमोल हमारे।

(2) करनी कहौं कूर कमतर की, छाती कर बज्जर की।
तीस जनवरी सन् अड़तालीस, श्री बिड़ला मंदिर की।
घर की एक कुरैया से गई, दुर्गति सब घर करकी।
गोली बनी मौन बापू की, बच्चई के रे कर कीं ।

बापू की हत्या से पूरे देश में शोक की लहर व्याप्त हो गई जन-जन इस आघात से दुखी हो गया। लोगों में गांधी जी की हत्या पर आक्रोश पनपा। देशवासियों ने बापू के बिना अपने-आप को अनाथ महसूस किया। उनके बताए मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञा ली। सारे राष्ट्र के साथ बुन्देलखण्ड अँचल का लोकमन भी बापू की हत्या से कराह उठा। इस आपात को सहकर लोककवि ने इस तरह श्रृद्धांजलि देते हुए एक छनदयाऊ फाग लिखी।

दोहा - बापू तुम बिन हो गओ, भारत देश अनाथ।
कौरन पकड़ है हाय अब, हम अन्धों का हाथ।।
टेक - बापू हमें भूल ना जइयो, खबर लेत नित रइयों।
छन्द - सुधि ना रही तुम्हारी भूल, सूरत रई नैनन में झूल।
जैसे बिना गंध को फूल, छवि हीन भओ।
बुलबुल उड़ी घोंसला त्याग, सुनों पड़ो हिन्द को बाग।
पीको भओ सुशीलो राग, खो लाल गये।
उड़ान - लाल आज अनमोल हिरानों, कोऊ पता बतइयो।
छाइ है अँधयारी भारी, प्यारो भानु दिखइयो।
टेक - अलख रूप में अपने निसदिन, हमको राह लखइयो।
छन्द - तुमने चरखा चक्र चलाओ, दुख से अपना देश बचाओ।
ताको है आजाद कराओ, सब कष्ट सहे।
जैसो सुन्दर वृक्ष लगाओ, ताके फल को चख न पाओ।
छोड़ो परहित हेत दिखाओ, बस दूर रहे।
उड़ान - अबै चाहना हती तुमारी, फिर के तन घर अइयो।
पड़ी भँवर में डगमग होवे, नैया पार लगैयो।
टेक - प्रबल प्रताप पुण्य से अपने भारत सुखी बनइयो।
छन्द - होवे देश हमारो सुख में, कबहुँ फंसन ना पावें दुख में।
सब के मधुर वचन हो मुख में, जो गुण तुमरे।
होकें आशिष देव निहाल, राके चिरंजीव अतिकालं बललम भाई जवाहर लाल, नेता हमरे।
उड़ान - आत्म शक्ति है महा तुम्हारी, सारे विधान मिटइयो।
कोट-कोट है खेत सिंह की, तुम प्रणाम अब लइयो।

इस तरह हम पाते है बुन्देली लोक साहित्य पर महात्मा गाँधी का गहरा प्रभाव पड़ा।

बा-बापू के जीवन से जुड़े कुछ रोचक प्रसंग

अरविंद मोहन

यह कस्तूरबा और गांधी के जन्म का डेढ़ सौवां साल है। लगभग 60 साल के साथ वाला दोनों का जीवन कैसा चला, कितना फलदायी रहा, दोनों में परस्पर कितना स्नेह और आदर भाव रहा, यह सब विगत डेढ़ सौ सालों में कई तरह से देखा-परखा गया है। और कहना न होगा कि हर देखने वाले को उसमें कुछ न कुछ विशेष लगा। गांधी जी ने खुद भी अपनी आत्मकथा लिखकर अपने पक्ष का काफी कुछ सामने रखा, जिसे पढ़कर दुनिया आज तक हैरान होती है। कुछ रोचक प्रसंगों के माध्यम से बा और बापू के जीवन, व्यक्तित्व और कामों में झाँकने की एक कोशिश की गई है।

हठीले बापू, महा-हठीली बा

बा के नाम से सारे गांधीवादियों और मुल्क में जानी गई कस्तूरबा उम्र में मोहनदास से कुछ बड़ी थीं जो सामान्य चलन न था, पर भाइयों के संग शादी के चक्कर में छोटे मोहनदास भी आ गए और उनकी शादी हो गई। पर उम्र में कस्तूरबा जितनी कम बड़ी थीं, जीवनभर गांधी को सहयोग देने और हर हाल में उनके साथ खड़े रहने के मामले में उससे कई गुना ज्यादा बड़ी साबित हुई। बा दक्षिण अफ्रीका से शायद बापू से भी ज्यादा बदलकर लौटी थीं।

दक्षिण अफ्रीका के लोगों का अब दावा है कि भारत ने उनको मोहनदास करमचंद गांधी दिया था और बनाकर लौटाया और हम वहाँ गांधी के जीवन में घटी घटनाओं तथा उनके अंदर होने वाले बदलावों के बारे में जानते हैं, पर गांधीजी ने उन बदलावों के अनुरूप कस्तूरबा को कैसे बदला, या राजी किया, इसके किस्से कम लोग जानते हैं। पर सामान्य इच्छाओं वाली बा ने अपने पति के साथ अपने जीवन के नई दिशा को अपने बच्चों के भविष्य को अपने आने वाली पीढ़ी के जीवन को अपनी छोटी-छोटी इच्छाओं को किस तरह दबाया, गांधी से इन मामलों पर मतभेद को कैसे सुलटाया, यह किसी के ध्यान में नहीं रहा। आज यह कई लेखकों की कल्पना को उकसाने वाला साबित हुआ है। इसीलिए आज बा पर कई उपन्यास आ गए हैं जिनमें एक स्त्रीवादी स्वर भी होता है।

पर मजेदार बात यह है कि इन बदलाओं और हर मुद्दे पर हुए टकराव की चर्चा खुद गांधी जी ने ही सबसे विस्तार से और प्रेम से अपनी आत्मकथा और दक्षिण अफ्रीका वाली अपनी किताब में की है। उन्होंने खुद लिखा है कि मुझे आरंभ में जो अनुभव हुआ, उसके आधार पर कहूँ तो बा बहुत हठीली है। मैं दबाव डालता था तो भी वह अपना चाही ही करती थी। इससे हमारे बीच कड़वाहट भी बनी रही। लेकिन मेरा जनसेवा का जीवन जैसे-जैसे बढ़ता गया वैसे-वैसे बा का मुझमें समाने का गुण भी खिलता गया और वह मेरे काम में समाती गई। गांधीजी को लगता है कि यह हिंदुस्तानी पत्नी वाला गुण ही था।

बा की पहली जेल-यात्रा

1934 में दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने ईसाई धर्म के अनुसार और पंजीकृत न हुई सभी शादियों को कानून की दृष्टि से अमान्य बना दिया। इसका सीधा सा मतलब था कि हिंदू, मुसलमान, पारसियों की शादियों को सरकारी कानून स्वीकार ही नहीं कर रहा है। इसका व्यावहारिक मतलब तो यह था हिंदुस्तानियों को वीज़ा के कागजात बनवाने समेत वे सारे काम कराने मुश्किल हो

जाते जिनमें पत्नी की भी भागीदारी होनी थी। पर बा राजी हुई तो गांधी ने उनसे उपवास कराना और नीम का रस पिलाना शुरू किया। चौदह दिनों तक यह क्रम चला और बा कमजोर होती गईं। पर इस बीच गांधी ने उनका सारा काम किया। सुबह दातुन कराने से लेकर पखाना पेशाब कराना अपने हाथों से बा को उठाकर बाहर लाना और धूप में लिटाना और हर काम करते थें। दिनभर वे बा की खाट के पास बैठे उसे धूप से बचाने के लिए यहाँ-वहाँ खिसकाते रहते थें। सूजे हुए शरीर पर नीम के तेल की मालिश करते थे। वे सब कुछ कर लेते थे, पर उनको चोटी बनाना नहीं आता था। भतीजे छगनलाल की बहू काशीबा यह काम करती थीं। वे सब करने को तैयार थीं, पर गांधी उन्हें बाकी कुछ करने न देते थे। एक दिन उनको आने में देर हुई तो बापू ने खुद से चोटी बनाना भी शुरू कर दिया था।

कई मामलों में गोरी सरकार को झुका चुके गांधी और हिंदुस्तान की उनकी मंडली ने इसका एक और अर्थ दिया कि इस कानून से विवाहित हिंदुस्तानी औरतों का दर्जा पत्नी का न रहकर रखैल भर का हो जाएगा। इसने इसे ज्यादा संवेदनशील बना दिया और इस पर एक बड़ी लड़ाई शुरू हुई। सत्याग्रह हुआ और गांधी पहली बार बड़ी संख्या में महिलाओं को इस सत्याग्रह में शामिल करने में सफल रहें और इस मामले में भी उन्होंने शुरूआत घर से की।

एक दिन रोटी बनाती कस्तूरबा से उन्होंने कहा, "आज तक तू मेरी ब्याही हुई पत्नी थी। अब तू मेरी ब्याही हुई पत्नी नहीं रही। जाहिर है बात बा को चुभ गई। फिर विरोध की बात आई। अकेले पुरूषों की जगह स्त्रियों के विरोध की जरूरत मानी गई। फिर विरोध की कीमत की बात भी आई इससे ठीक पहले बा का एक बड़ा ऑपरेशन हुआ था। वें पथ्य-परहेज से रह रही थीं और काफी कमजोर भी थीं। पर गांधी उनकी आंदोलन के सिलसिले में जेल जाने तक को कह रहे थे। बा जेल के सवाल पर तो नहीं डरीं, लेकिन जेल के भोजन को लेकर जरूर चिंतित हुई। तब गांधी ने कहा कि जेल का खाना न खाकर तुम फल खा लेना। पर जेल में फल कौन देगा। गांधी ने कहा कि फल न दें तो उपवास रखना। हुआ भी यही। बा समेत बड़ी संख्या में महिलाओं ने इस काले कानून का विरोध करते हुए जेल यात्रा की। दक्षिण अफ्रीका सरकार के लिए इतनी महिला कैदियों को संभालना मुश्किल काम साबित हुआ और बा ने सचमुच फलों की माँग लेकर उपवास रखा, जिसके चलते पाँच दिन बाद जेल प्रशासन झुका और बा को फल खाने को मिले। पर इतने कम होते थे कि बा का पेट नहीं भरता था। इस प्रकार बा के जेल जाने और अनशन करने की शुरूआत तो हुई, पर तीन महीने जेल में रहकर वे इतनी कमजोर हो गई थीं कि खुद गांधी उन्हें देखकर बहुत दुखी हुए और बोल पड़े, "तू तो बहुत बूढ़ी हो गई।"

बा के सेवक बापू

बा जीवनभर गांधी की सबसे भरोसेमंद और मजबूत सहयोगी ही नहीं, अच्छी सेवक भी थीं और गांधी की हर छोटी-बड़ी जरूरत का ख्याल रखती थी। सफाई के मामले में वे गांधी से इक्कीस ही थीं। उनकी सेवा टहल और सफाई की आदत गांधी को पड़ गई थी। उनकी मृत्यु के बाद इस भूमिका में आई गांधी के चचेरे भाई की पोती मनु ने अपनी काम और सफाई से बापू को संतुष्ट नहीं कर सकती थी। पर गांधी ने बा की कितनी सेवा की, इसकी चर्चा प्रायः नहीं होती। शादी कानून वाले सवाल पर गांधी ने जब दक्षिण अफ्रीका में आंदोलन छेड़ा था, उसके ठीक पहले बा के गर्भाशय का एक मुश्किल ऑपरेशन हुआ था। बा कमजोर थीं तभी गांधी ने आंदोलन में उनको और काफी महिलाओं को शामिल करके उनके

जेल जाने का रास्ता बना दिया। जेल में उपवास और बाद में आधा पेट फल खाकर तीन महीने गुजारने में बा बहुत कमजोर हो गई। जेल से बाहर आने पर भी हाजमा खराब रहा। उल्टी और शरीर फूल जाने की शिकायत बढ़ी, तब गांधी ने डॉक्टरों की मदद ली। फायदा न हुआ। फिर उन्होंन बा को राजी किया कि वे उनका इलाज मानें । बा राजी हुई तो गांधी ने उनसे उपवास कराना और नीम का रस पिलाना शुरू किया। चौदह दिनों तक यह क्रम चला और बा कमजोर होती गई। पर इस बीच गांधी ने उनका सारा काम किया। सुबह दातुन कराने से लेकर पखाना-पेशाब कराना, अपने हाथों से बा को उठाकर बाहर लाना और धूप में लिटाना जैस हर काम करते थे। दिन भर वे बा की खाट के पास बैठे उसे धूप से बचाने के लिए यहाँ वहाँ खिसकाते रहते थे। सूजे हुए शरीर पर नीम के तेल की मालिश करते थे। वे सब कुछ कर लेते थे, पर उनकी चोटी बनाना नहीं आता था। भतीजे छगनलाल की बहू काशीबा यह काम करती थीं। वे सब करने को तैयार थीं, पर गांधी उन्हें बाकी कुछ करने न देते थे। एक दिन उनको आने में देर हुई तो बापू ने खुद से चोटी बनाना भी शुरू कर दिया था। बालों में कंधा करके उन्होंने चोटी बनाने की तैयारी शुरू की तभी काशीबा आ गई। पर गांधी की यह सेवा व्यर्थ न गई और दो हफ्ते में कस्तूरबा न सिर्फ स्वस्थ हुई, बल्कि उनका शरीर पहले से अच्छा हो गया।

बा को न पढ़ाने की भूल

गांधी के आलोचक और कस्तूरबा के प्रशंसकों की एक बहुत शिकायत रहती है कि गांधी ने खुद तो बहुत पढ़ाई की और डिग्रियाँ लीं, जबकि कस्तूरबा (और बच्चों) को डिग्री और पढ़ाई से दूर रखा। बच्चों को डिग्री वाली पढ़ाई से दूर रखने वाली बात तो सही है, पर शिक्षा से दूर नहीं रखा। हाँ, कस्तूरबा के मामले में यह आरोप एक हद तक सही है। आलोचक कस्तूरबा के नाम पर आज बालिका विद्यालय खोलने की आलोचना करते हैं और ज्योतिबा फुले का उदाहरण देते हैं जिन्होंने सबसे पहले अपनी पत्नी सावित्री बाई फुले को शिक्षित किया और फिर दोनों ने शिक्षा और समाज सुधार का काम किया। एक तो ऐसी तुलना का कोई मतलब नहीं होता। दूसरे गांधी और फुले के काम की भी तुलना नहीं है। पर बा के लगभग निरक्षर होने की बात अपनी जगह है। बा मुश्किल से गुजराती पढ़ पाती थीं और चिट्ठी लिखना व दस्तखत भर करना जानती थी। पर वह दक्षिण अफ्रीका जाकर अंग्रेजी बोलना सीखना हो या चंपारण रहकर भोजपुरी सीखना, इस काम में गांधी से कम न थी। बल्कि दस महीने रहकर भी गांधी भोजपुरी नहीं सीख पाए और उनसे कम समय रहकर ही बा सीख गई।

पर बा का न पढ़ना किसी से भी ज्यादा बापू को अखरता था। और बा ने भले कभी इस बात की शिकायत न की हो, पर गांधी ने अपनी आत्मकथा में इस बारे में विस्तार से सफाई दी है। अफसोस जताया है उन्होंने लिखा है कि मैं मानता था कि पत्नी को पढ़ा लिखा होना ही चाहिए। पर जवानी में भोग विलास के मोह ने मुझे यह करने न दिया। तब दिन में बड़े बूढों के होते पर्दा प्रथा के चलते पत्नी की ओर देखना भी गुनाह था और रात के एकांत में भोग के मोह ने यह काम नहीं करने दिया या जो प्रयास किया, उससे खास फायदा नहीं हुआ। और जब विषय भोग के नींद से जागा तब सार्वजनिक जीवन में इतना उलझ गया था कि बा को पढ़ाने के लिए समय देने की स्थिति में न था। मैं मानता हूँ कि यदि मेरा प्रेम वासना से दूषित न होता तो आज वह विदुषी स्त्री बन गई

होती। गांधी ने यह भी लिखा है कि अपनी इस कमजोरी का गुस्सा कई बार बा पर उतारता था, उसे मायके भेज देता था। पर जल्दी ही मेरी समझ में आ गया कि ऐसा करना सिर्फ मेरी मूर्खता थी।

बापू की भी नहीं मानी बा ने

गांधी ताउम्र तरह-तरह के प्रयोग करते रहे। खाने पहनने से लेकर हर चीज में और किसी और से अपनी बात मनवाने के पहले वे अपने ऊपर प्रयोग करने से नहीं चूकते थे। इसमें कई बार उन्होंने खुद को संकट में भी डाला और कई बार प्रयोग का शिकार रहने वाली बा को भी। इससे उलट बा ने उन्हें कई बार संकट से उबारा जिसमें डाक्टर की सलाह पर गाय का दूध न पीने की उनकी जिद को बकरी के दूध से तुड़वा कर उनकी जान बचाना भी शामिल है। गांधी जब अन्न न खाने और सिर्फ मेवे तथा शहद खाने का प्रयोग कर रहे थे तब बा सामान्य खाना खाती थीं। चंपारण आने पर जब गांधी को शब्द और मेवा खाना महँगा लगा तो पहले मूँगफली और बाद में उबली सब्जी और भात खाने लगे, पर दिनभर के भोजन में ज्यादा से ज्यादा पाँच चीजों का प्रयोग ही करते थे। पर एक बार दक्षिण अफ्रीका में जब बा की बीमारी नहीं सुधर रही थी तब जाने किस किताब से पढ़कर गांधी ने बा को नमक और दाल छोड़ने की सलाह दी। बा इस पर राजी न थी। कई तरह से तर्क दिए गए, पर वे राजी ही नहीं हो रही थीं। गांधी की बातों से ऊबकर उन्होंने कह दिया कि नमक ओर दाल तो ऐसी चीज हैं जिसे कोई कहे तो आप भी नहीं छोड़ सकते। गांधी को लगा उनका दाँव सही बैठ गया। उन्होंने तुरंत बा की शर्त मानने का एलान कर दिया और कहा अब तू नमक और दाल छोड़े, न छोड़े मैं एक साल तक ये चीजे नहीं खाऊँगा। बा फँस गई। वह बोल पड़ी कि आप अपना खाना चालू रखिए, मैं नहीं खाऊँगी। आप अपना निश्चय छोड़िए क्योंकि वह मेरे लिए नमक दाल छोड़ने से ज्यादा बड़ी सजा हो जाएगी। पर गांधी न माने। रो-धोकर बा ने गांधी का इलाज चलाया। वे ठीक भी हुई। गांधी समझाते रहे कि अब नमक दाल छोड़ ही दो, पर बा नहीं मानी। उन्होंने सामान्य खाना शुरू किया, लेकिन गांधी ने अपना फैसला जारी रखा और साल की सीमा भी कम पड़ गई।

गांधी जी के जन्मदिन पर

दुष्यंत कुमार

मैं फिर जनम लूँगा
फिर मैं
इसी जगह आऊँगा
उचटती निगाहों की भीड़ में
अभावों के बीच
लोगों की क्षत-विक्षत पीठ सहलाऊँगा
लँगड़ाकर चलते हुए पाँवों को
कन्धा दूँगा
गिरी हुई पद-मर्दित पराजित विवशता को
बाँहों में उठाऊँगा।
इस समूह में
इन अनगिनत अचीन्ही अवाजों में
कैसा दर्द है।
कोई नहीं सुनता!
पर इन आवाजों को
और इन कराहों को
दुनिया सुने मैं ये चाहूँगा।
मेरी तो आदत
रोशनी जहाँ भी हो
उसे खोज लाऊँगा
कातरता, चुप्पी या चीखें,
या हारे हुओं की खीज
जहाँ भी मिलेगी
उन्हें प्यार के सितार पर बजाऊँगा।
जीवन ने कई बार उकसाकर
मुझे अनुल्लंघ्य सागरों में फेंका है
अगन-भट्ठियों में झोका है,
मैने वहाँ भी
ज्योति की मशाल प्राप्त करने के यत्न किए
बचने के नहीं,
तो क्या इन टटकी बंदूकों से डर जाऊँगा?
तुम मुझको दोषी ठहराओ
मैंने तुम्हारे सुरसान का गला घोंटा है
पर मैं गाऊँगा
चाहे इस प्रार्थना सभा में
तुम सब मुझपर गोलियाँ चलाओ
मैं मर जाऊँगा
लेकिन मैं कल फिर जनम लूँगा
कल फिर आऊँगा।

महात्मा गाँधी का साध्य एवं साधन सम्बन्धित चिन्तन

डॉ0 श्याम कान्त

महात्मा गाँधी जी भारतीय संस्कृति के मूल्यों के सम्पोषक एवं उन्नायक रहे हैं। उन्होंने न केवल भारतीय संस्कृति के मूल्यों को अपनाया, बल्कि उसके अनुरूप अपने जीवन को जिया और अन्य सभी लोगों में इन मूल्यों को अपने जीवन में उतारने के लिए आस्था को जगाया। गाँधी जी के मानव जीवन के मूल्य सम्बन्धित विषयों में एक प्रमुख विषय साध्य एवं साधन से सम्बन्धित है। उनके साध्य एवं साधन सम्बन्धित चिन्तन को लेकर बड़ा ही विवाद पाया जाता है। कुछ आलोचकों का यह कहना है कि गाँधी जी साधनों के विषय में बहुत कठोर थे और यह कठोरता सामाजिक प्रगति की अवधारणा के विपरीत थीं क्योंकि सामाजिक परिवर्तन के लिए कभी-कभी रूढ़ि विरूद्ध साधनों को अपनाना पड़ता है। उपयुक्तता के विषय में बहुत हठी नहीं हो सकते हैं। क्रान्ति में साधन की अपेक्षा साध्य प्रमुख होता है। कुछ ऐसे भी विचारक हैं जिनका यह मानना है कि गाँधी जी के मृत्योपरान्त उनके साधनों की शुद्धता सम्बन्धित विचार की उपादेयता को स्वीकार किया जाने लगा है। गाँधी जी का यह दृढ़ मत है कि मेरे लिए भगवान सत्य और प्रेम हैं। भगवान आचार संहिता और नैतिकता है। भगवान निर्भयता है। भगवान प्रकाश और जीवन का स्रोत है। फिर भी वह इन सबसे ऊपर है। भगवान आत्मा है। वह नास्तिक भी है। हम सब कुछ नहीं है। वही सब कुछ है।

सामान्य रूप से साध्य उसे कहते हैं। जिसको सिद्ध किया जाए और साधन वह होता है, जिसके द्वारा साध्य को सिद्धया प्राप्त किया जाए सामान्यतया लोग अपने उद्देश्य को अधिक महत्व देते हैं और उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किसी भी प्रकार की साधना को अपनाने के लिए उद्यत रहते हैं। परन्तु महात्मा गाँधी जी का यह मानना है कि किसी पवित्र साध्य की सिद्धि के लिए साधनों का भी पवित्र होना आवश्यक है। यदि साधन अपवित्र है और साध्य पवित्र है, तो साधन की अपवित्रता से साध्य स्वतः ही दूषित हो जाएगा। वस्तुतः महात्मा गाँधी जी साध्य एवं साधन दोनों की ही पवित्रता एवं उत्कृष्टता को समतुल्य महत्व देते हैं। यही कारण है कि उन्होंने भौतिकवादियों के साध्य एवं साधन सम्बन्धित विचार को अस्वीकार किया। उन्होंने मैकियावली के इस विचार का खण्डन किया है। साध्य ही साधनों की श्रेष्ठता को सिद्ध करते हैं। गाँधी जी मैकियावली के विचार का खण्डन करते हुए यह कहते हैं कि बबूल बोने से आम का पेड़ नहीं उग सकता। इसी प्रकार उन्होंने मार्क्स जैसे विचारकों के द्वारा एक वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए रक्त क्रान्ति एवं वर्ग-संघर्ष जैसे गर्हित साधन के उपयोग का प्रबल विरोध किया है। उनका कहना हैं कि हिंसा प्रति हिंसा को जन्म देती है। इसलिए हिंसा से स्थापित वर्गहीन समाज में स्थायी शान्ती की आशा नहीं की जा सकती। यद्यपि यह सत्य है कि साधन की पवित्रता साध्य की सिद्धि को विलम्बित कर देती है और पवित्र साध्य से साधन की सिद्धि तीव्र गति से नहीं हो पाती है, किन्तु यह भी सत्य है कि पवित्र साधन से प्राप्त साध्य विलम्बित और आंशिक होते हुए भी मनुष्य में नैतिक बल उत्पन्न करता है और अधिक स्थायी भी होता है। महात्मा गाँधी जी साध्य और साधन के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए यह कहते हैं कि साधनों की तुलना आप एक बीज से कर सकते हैं एवं साध्य की तुलना उस बीज के विकसित वृक्ष से कर सकते हैं। इस प्रकार साध्य साधन का सम्बन्ध वृक्ष एवं बीज जैसा है। वे यह मानते हैं कि हिंसा का सहारा लेकर शक्तिमय और चरित्रवान समाज की रचना नहीं की जा सकती। अहिंसात्मक साधनों से स्थापित समाज निश्चित ही अहिंसात्मक मनोवृत्ति वाला समाज होगा। महात्मा गाँधी जी राजनीति में नैतिकता के पोषक थे। वे लिखते हैं कि प्रत्येक गलत साधन अपने प्रयोक्ता की आत्मा पर एक प्रेत की भाँति आ बैठेगा। एक तांत्रिक शिष्य की भाँति जो अपने गुरू के पास आया और अपने गुरू से यह कहा कि श्रीमान् मैंने एक प्रेतात्मा को बुला लिया है और अब मैं उससे छुटकारा नहीं पा रहा हूँ। इसी प्रकार उचित साध्य के लिए प्रयोग किया गया अनुचित साधन अपने प्रयोक्ता को संकट में डाल देगा। महात्मा गाँधी ने अपनी आत्मकथा में अहिंसा को सत्य की सिद्धि के लिए

आवश्यक बताया है। उन्होंने लिखा है कि यदि इन पुस्तकों के अध्यायों का हर पृष्ठ पाठकों को इस बात की घोषणा नहीं करता कि सत्य की अनुभूति के लिए अहिंसा ही केवल एक मात्र मार्ग है तो मैं अपने प्रयत्नों को निरर्थक समझूँगा। वास्तविकता यह है कि महात्मा गाँधी जी ने हिंसा मूलक सारे कार्यो को अमानवीय बताया है। उन्होंने लिखा है कि अहिंसा किसी भी धर्म का पहला परिच्छेद है। वह मेरे धर्म का आखिरी परिच्छेद है। यदि भारत ने हिंसा को स्वीकार किया तो मैं भारत में रहने की चिन्ता नहीं करूँगा। उनका यह मानना है कि आत्मानुभूति ही मानव का अन्तिम उद्देश्य होता है जो केवल अहिंसा के ही आधार पर प्राप्त हो सकता है। महात्मा गाँधी जी इतिहास के उदाहरण से यह बताते हैं कि इतिहास इस बात का साक्षी है कि केवल सत्ता अपहरण के नाम पर नहीं, बल्कि धार्मिक सुधार एवं धर्म-प्रचार जैसे दयामूलक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी हिंसक उन्माद एवं जोश में मानवता का इतिहास रक्तरंजित हो गया। भगवान के कितने ही मन्दिर एवं मस्जिद तथा गिरजे, कितनी ही प्रतिमाएँ खण्डित हो गयीं एवं कितने ही निर्दोष जीवन के अन्त हुए। धर्म युद्ध के नाम पर हुई हिंसाएँ आज तक चल रही हैं। इसीलिए अपने महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए अदम्य उत्साह, अगाध भक्ति एवं अपरिमित निष्ठा से यदि जुट जाना ठीक है तो मानवता के व्यापक कल्याण के लिए उस पर अहिंसा का अंकुश भी अत्यन्त आवश्यक है।

महात्माा गांधी जी का यह विचार था कि भौतिक प्रगति भले ही कुछ शारीरिक सुखों की उपलब्धि बढ़ा दे, किन्तु उससे आध्यात्मिक सुख एवं शान्ति की उपलब्धि नहीं मिल सकती। इसीलिए उनका यह कहना है कि समाजवाद और साम्यवाद कोरा भौतिकवाद है, जिसका आधार आर्थिक स्वतंत्रता है। उनकी दृष्टि में आर्थिक स्वतंत्रता मनुष्य के जीवन में उतनी महत्वपूर्ण नहीं है, जितनी कि नैतिक स्वतंत्रता है। उन्होंने एक आदर्श रामराज्य की परिकल्पना की है, जिसके लिए आध्यात्मिक स्वतंत्रता एवं नैतिक स्वतंत्रता के विशेष मूल्य है। नैतिक स्वतंत्रता के लिए महात्मा गाँधी जी ने सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रहाचर्य जैसे साधनों की आवश्यकता पर बल दिया है।

महात्मा गाँधी जी का यह दृढ मत है कि आत्मानुभूति भौतिकवादी साधनों से प्राप्त नहीं हो सकती है। आत्मानुभूति के लिए जीवन में इन नियमों का पालन करना आवश्यक होता है जो आत्म-परिशुद्धि का प्रमुख साधन है। इस प्रकार के आत्मानुशासन की परिकल्पना फाँसिस्टवादियों और गाँधी वादियों में समानरूप से पायी जाती है, किन्तु फॉसिस्टवादियों एवं महात्मा गाँधी जी की परिकल्पना में अन्तर यह है कि फासिस्टवादी राज्य की शक्ति के द्वारा यह नियंत्रण लगाना चाहते हैं, जबकि गाँधी जी इसे नैतिक अनुशासन द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं।

महात्मा गाँधी जी ने साध्य साधन के औचित्य पर विचार करते समय यह अच्छी तरह से समझ लिया था कि सुकर्म एवं दुढकर्म क्या हैं ? इसके आधार पर उन्होंने मनु, प्रशस्तपाद, महाभारत आदि की ही भाँति धर्म का लक्षण बताते हुए एकादश व्रतों को अपनाने की बात की है और इसकी उन्होंने व्यवस्थित रूप में स्थापना की है। उन्होंने जिन एकादश व्रतों की स्थापना की है, वे हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, शरीर-श्रम, अस्वाद, अभय, सर्वधर्म समभाव, स्वदेशी, अछूतौध्दार। इनमें प्रथम पाँच सनातन धर्म एवं जैन धर्म के आधारभूत नैतिक सिद्धान्त हैं तथा अन्य समय की आवश्यकता के अनुरूप स्थापित व्रत हैं। यद्यपि पाश्चात्य जगत के दार्शनिकों ने भी ऐसे प्रधान सद्गुणों की चर्चा करके नैतिक सद्गुणों के रूप में ऐसे साधनों का विवेचन किया है, किन्तु जब तक साधनों के विषय में महात्मा गाँधी जी द्वारा प्रस्तुत व्यावहारिक दिशा-निर्देश नहीं होगा, तब तक साधन शुद्धि की लक्ष्मण रेखा सुविधावाद के अल्प प्रहार से सदा एवं सर्वदा टूटती जाएगी।

महात्मा गाँधी जी का यह कहना है कि सत्य के पुजारी का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि सत्य की कसौटी और उसके साधनों की रक्षा करें। वास्तविकता यह है कि महात्मा गाँधी जी के लिए सत्याग्रह आत्मशक्ति अथवा प्रेमशक्ति का पर्याय है। उनका यह कहना था कि जो एक विशेष समय पर एक पवित्र हृदय महसूस करता है सत्य है, तथा उस पर दृढ़ रहकर विशुद्ध सत्य प्राप्त

किया जा सकता है। सत्य स्वयं में स्पष्ट है, किन्तु मनुष्य अपूर्ण होने के कारण अज्ञानरूप मकड़ी के जाले में छिपा हुआ है और ज्योंही पवित्र करने वाला अनुशासन अज्ञान को दूर करता है, सत्य प्रकाश में आ जाता है। अतएवं सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं हैं। एक स्थान पर तो वे यहाँ तक लिखते हैं कि मेरा कोई ईश्वर नहीं, सिवाय सत्य के, जिसकी मैं सेवा करूँ। सिवाय सत्य के मैं अन्य किसी की भक्ति नहीं करता और मैं सिवाय सत्य के किसी अन्य का अनुशासन नहीं मानता। पुनः वे लिखते हैं कि सत्य की प्रत्येक खोज करनी चाहिए और ज्योंही उसके दर्शन हों, उसके द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए, किन्तु किसी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं होना चाहिए कि वह अपने सत्य के विचारों को दूसरे पर थोपे।

महात्मा गाँधी जी सत्य के दो रूप बताते हैं-
एक पूर्ण सत्य एवं दूसरा सापेक्षिक सत्य। पूर्ण सत्य ईश्वर है और सापेक्षिक सत्य वह है जिसे हम सत्य समझते हैं। महात्मा गाँधी जी ने इस बारे में लिखा है कि जब तक मुझे पूर्ण सत्य नहीं मिलता, तब तक मैं सापेक्षिक सत्य को अपनाये हुए हूँ। मार्क्सवाद ने जिस सत्य प्राप्ति को अपना साध्य बनाया है, वह समाज सापेक्ष है। इसलिए जनहित में सामयिक रूप से मार्क्सवाद क्रान्तिकारी हिंसा को आज्ञा देता है, जो केवल सीमित स्थितियों में, सीमित समय के लिए सीमित अवस्थाओं में, सीमित साध्य के लिए है, लेकिन इसके लिए कोई अनिवार्य बाध्यता नहीं है, केवल सन्दर्भमूलक बाध्यता है। इसलिए क्रान्तिकारी हिंसा समाज सापेक्ष हो सकती है, अनिवार्य या आवश्यक नहीं। इसीलिए यह व्यक्तिगत हिंसा से एकदम भिन्न है, जिसमें बाल हिंसा, आन्दोलन हिंसा एवं युद्ध हिंसाएँ होती हैं। इनमें केवल युद्ध हिंसा एवं युद्ध हिंसाएँ होती हैं इनमें केवल युद्ध हिंसा मजबूरी के स्तर पर होती हैं। जो भी हो, मार्क्सवाद के क्रान्ति दर्शन में हिंसा का प्रवेश होता है। मार्क्स कहते हैं कि हिंसा के द्वारा ही जीर्ण-शीर्ण सामाजिक व्यवस्था को परिवर्तित कर नवीन समाज व्यवस्था की स्थापना की जा सकती है।

मार्क्सवाद में निश्चित रूप से हिंसा को स्थान दिया गया है। परन्तु हिंसा के द्वारा जिस समाज की रचना होती है, उसमें हिंसा का अन्त संभव नहीं होता है। मानवता के कल्याण के लिए मानव में अन्तर्निहित साधुता में विश्वास रखकर मानवीय विवेक और पारस्परिक बन्धुत्व में आस्था रखनी होगी। ऐसी स्थिति में महात्मा गाँधीजी के अनुसार अहिंसा को साधन के रूप में स्वीकार करना सत्य की सिद्धि के लिए आवश्यक है। उनका यह कहना है कि साधन शुद्धि का सिद्धान्त तो वस्तुतः सत्य एवं अहिंसा के नैतिक सिद्धान्तों से ही फलित हुआ है। महात्मा गाँधी जी साध्य एवं साधन में कोई भेद नहीं करते हैं। वे कहते हैं कि जिसे मैं अपना जीवन धर्म मानता हूँ, उसमें साधन और साध्य में कोई भेद नहीं है। साधन में ही अन्ततः सब कुछ समाविष्ट है।, ठीक उसी अनुपात में साध्य और ध्येय की और हमारी प्रगति होगी। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कोलम्बिया विश्वविद्यालय में दिये गये अपने एक भाषण में महात्मा गाँधीजी के ही दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए यह कहा था कि साध्य उचित होने पर भी यदि साधन अनुचित है तो वे साध्य को दूषित कर देंगे या उसे गलत दिशा में मोड़ देंगे।

महात्मा गाँधी जी का यह मानना है कि दुनिया की कोई भी शक्ति पवित्र नैतिक साधन की उपेक्षा नहीं कर सकती और अगर वह कभी ऐसा करने का दुस्साहस करती है तो अपने लिए खतरे को आमंत्रण देती है। बुरे साधन से केवल साध्य ही नहीं अपितु इसका प्रयोक्ता भी भ्रष्ट हो जाता हैं। दूसरी ओर पवित्र एवं नैतिक साधनों के उपयोग से मानव का मन निष्कलुषित एवं उसकी आत्मा उद्बुद्ध तथा महान होती है। इसीलिए साध्य की सिद्धि हो या नहीं, पवित्र साधनों का उपयोग ही अपने आप में दिव्य पुरस्कार है। महात्मा गाँधी जी का यह स्पष्ट रूप से कहना है कि सच्ची एवं सम्पूर्ण साधना ही सम्पूर्ण साधना की सम्पूर्ण सफलता या आत्यन्तिक विजय है। अनैतिक साधनों के आधार पर प्राप्त सफलता सच्ची नहीं है, क्योंकि इसमें हम अनैतिकता की विजय एवं नैतिकता की पराजय स्वयं स्वीकार कर लेते है। यानी हम सत्यमेव जयते एवं अतोधर्मस्ततोजयः के सिद्धान्तों को स्वयं झुठलाते हैं। यह नैतिक पराजय के साथ-साथ मानव प्रतिष्ठा के भी प्रतिकूल है। महात्मा गाँधी जी के इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए आचार्य कृपलानी ने कहा है कि नैतिक विधान ही वास्तविक धर्म है। बाह्य सुधारों से अधिक आन्तरिक सुधारों की आवश्यकता है।

महात्मा गाँधी जी का यह स्पष्ट रूप से कहना है कि मुझे चिन्ता साधनों की रक्षा की है। मैं जानता हूँ कि अगर हम शुद्ध साधनों की चिन्ता रख सकें, तो साध्य की प्राप्ति निश्चित है। मैं यह अनुभव करता हूँ कि साध्य की ओर हमारी प्रगति उतनी ही ठीक होगी, जितना कि हमारे साधन शुद्ध होंगे, यह तरीका शायद ज्यादा लम्बा दिखायी पड़े पर मुझे विश्वास है कि यह सबसे छोटा है। अतएव गाँधी जी के अनुसार साध्य का ऊँचा होना ही काफी नहीं है। साधन की पवित्रता एवं नैतिकता भी आवश्यक है और सच पूछा जाए तो साधन अधिक महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि जो मनुष्य कर्म करता है उस कर्म का फल मनुष्य के हाथ में नहीं होता, लेकिन कर्म जरूर हाथ में रहता है। इसलिए जो हाथ में होता है, वह ज्यादा महत्वपूर्ण है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि महात्मा गाँधी जी के लिए यह महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं है कि साध्य उचित है या नहीं। उनके लिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यदि साध्य को प्राप्त करने के लिए साधन अनुचित है, तो क्या वह साध्य उचित हो सकता हैं? हमारे युग के अन्य मानववादियों, उदाहरण के लिए एल्डस हक्सले और गिल्बर्ट मरे की भाँति गाँधी जी ने भी यह अनुभव किया कि जिस साध्य की प्राप्ति के लिए अनुचित साधन आवश्यक हों या उचित ठहराये जाए वह अच्छा हो ही नहीं सकता। जो धूल साधन को मैला करती है, वही साध्य की भी मैला करती है। 1924 ई में प्रकाशित अपने एक लेख गाँधी जी ने लिखा था कि लोग कहते हैं कि साधन आखिर साधन ही है। मैं कहूँगा कि साधन ही आखिरकार सब कुछ है। जैसा साधन वैसा साध्य। हमनें साधनों पर कुछ नियंत्रण किया है, साध्य पर कुछ नहीं। शिव की प्राप्ति का अनुपात ठीक साधनों के समानुपाती होगा। वास्तविकता यह है कि वैयक्तिक सदाचार से अधिक कुछ न मानकर महात्मा गांधी जी अस्पष्ट और अप्रत्यक्ष रूप से मानव समाज के भविष्य के विषय में वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत दृष्टिकोण को तुच्छ सिद्ध करते हैं। उनका यह कहना है कि अपने वैयक्तिक जीवन में भले बनो, बाकी सब अपने आप ठीक हो जाएगा। इस प्रकार महात्मा गाँधी जी अपना सारा बल मानव आचरण की शुद्धता पर देते हैं। उनका यह मानना है कि मानव आचरण की शुद्धता के बिना बुद्धि भ्रष्ट हो सकती है। इसीलिए वे कहते हें कि जब मनुष्य सत्य में सौन्दर्य देखने लगता है, तो सच्ची कला का उदय होता है।

पंचधातु

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

मैं जानता हूँ
क्या हुआ तुम्हारी लँगोटी का,
उत्सवों में अधिकारियों के
बिल्ले बनाये जाने के काम आ गयी,
भीड़ से बच कर,
एक सम्मानित विशेष द्वार से
आखिर वे उसी के सहारे ही तो जा सकते थे।
और तुम्हारी लाठी ?
उसी को टेक कर चल रही है,
एक बिगड़ी दिमाग डगमगाती सत्ता।
और तुम्हारा चश्मा ?
इतने दिनों से हर कोई
उसे ही लगा कर,
दिखाता रहा है अंधों को करिश्मा।
तुम्हारी चप्पल ?
गरीबी की चाँद जी,
करने के काम आ रही है।
और घड़ी ?
देश के नब्ज की तरह बंद है।
अच्छा हुआ
तुम चले गये
अन्यथा तुम्हारे तन का
ये जननायक क्या करते
पता नहीं।

गांधी का निर्भय भाव

डा0 रमाशंकर

भारत देश महात्मा गाँधी(1869–1848) की 150वीं जयंती मना रहा है। भारत में ब्रिटेन के वायसराय से गाँधी ने उनके पर्वताकार वेतन की शिकायत की थी और कहा था कि उनके मुकाबले में देश का आम निवासी कितनी दुश्वारी और गरीबी में रह रहा है। आज देश में कुछ कारपोरेट अधिकारियों को इतना वेतन मिलता है कि एक सामान्य दिहाड़ी मजदूर सौ जन्मों में भी नहीं कमा सकता है। किसानों का जीवन संकट में है और उन्हें अपनी उपज का उचित दाम नहीं मिल रहा है, वे कीटनाशक पीकर आत्महत्या कर रहे हैं । फसल की उचित कीमत माँगने पर उन्हें पीटा जा रहा है और तो और, उन्हें देश के शासकों से फरियाद करने से भी रोका जा रहा है। पिछले वर्ष उन्होंने दिल्ली में आकर अपनी बात कहनी चाही लेकिन उसे भी अनसुना कर दिया गया। आज गाँधी के वैष्णव जन की धुनें मद्धिम पड़ गयी हैं और हमारे सार्वजनिक जीवन में धर्म के आधार पर भेदभाव बढ़ा है। गाँधी ने अपने जीवन के अंतिम दशकों में अंतर–जातीय विवाहों को बढ़ावा दिया और इधर हाल के वर्षों में अंतर–जातीय और अंतर–धार्मिक विवाह करने के कारण कई नव विवाहित युवक–युवतियों को सम्मान के नाम पर मौत के घाट उतार दिया गया है।

दलितों के प्रति भेदभाव, बहिष्करण और हिंसा बढ़ी है। राज्य ने पुलिस के द्वारा जनता पर अत्याचार किए हैं और निर्दोष लोगों को एनकाउंटर के नाम पर मारा गया है।

लगभग गाँधी और गाँधीवाद के इस विरोधी समय में, स्वयं गाँधी होते तो क्या करते? यह सवाल पूछते ही हम उसका उत्तर भी पा जाते हैं। सबसे पहले वे जनता से अपील करते और अत्याचारी के खिलाफ असहयोग आंदोलन करते। वे सरकार के कानून को मानने से इंकार कर देते। यदि कोई उनके साथ न जाता तो अकेले ही राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्रियों से जनता की समस्याओं को लेकर मिलने चले जाते। अगर उन्हें न मिलने दिया जाता तो वे भूख–हड़ताल कर देते। पुलिस उन्हें पीट–पीटकर अगर मार भी देती तो कुछ न बोलते। वे अत्याचारी के अत्याचार की इंतेहा स्पष्ट कर देते। सवाल यह है कि महात्मा गाँधी में यह निर्भय भाव कहाँ से आता है? वह कौन सी ताकत है जो उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ न केवल अपने अंदर भर ली थी बल्कि करोड़ों भारतीय जनों की आत्मा में उतार दी।

वास्तव में पूरी बीसवीं शताब्दी में पूरी दुनिया मे नए हथियार बने और उन्होंने राज्य की हिंसा ढोने की ताकत अपरिमित कर दी। गाँधी ने इसे अहिंसा के द्वारा नकारा साबित कर दिया। नमक–सत्याग्रह को याद कीजिए जब ब्रिटिश पुलिस के भारतीय सिपाही सत्याग्रहियों को पीट रहे थे और कोई भी टस से मस न हुआ। उस समय मौजूद पत्रकार वेब मिलर ने वर्णन किया है उससे पढ़कर पता चलता है कि गाँधी ने पुलिस का भय, जेल का भय और लोगों से उनकी जान चली जाने का भय उनकी आत्मा से निकाल फेंका। भारतीय जनता के इस निर्भय भाव और उसकी क्षमता में विश्वास ने ही गाँधी को एक बेहतरीन राजनेता बनाया था। उन्होंने ब्रिटिश राज्य और उसकी संस्थाओं की सैद्धांतिक आलोचना करने के साथ–साथ अपने आचरण और लेखन से उनकी वैधता पर ही सवाल खड़े कर दिए।

यह सवाल बार–बार पूछा जाना चाहिए कि क्या गाँधी ने आजादी की लड़ाई अकेले ही लड़ी थी? तो इतिहास का जानकार कोई भी व्यक्ति कहेगा : नहीं। इसमें पूरा भारत शामिल था। इसमें मजदूर शामिल थे, महिलाएं, आदिवासी, और भारतीय उपमहाद्वीप में स्थित प्रत्येक समूह आजादी की लड़ाई में शामिल था। गाँधी ने इन सबको न केवल आजादी की लड़ाई से जोड़ा बल्कि इन समूहों को उनके स्थानीय उद्देश्य और अहिंसा की सर्व–व्यापी दृष्टि दी। वास्तव में गाँधी ने भारत की आजादी की लड़ाई को एक नैतिक आभा प्रदान की।

जो भी कमजोर था, सत्ता और समाज से भयभीत था, गाँधी ने उसे निर्भय बनाया।यदि आप शिवपूजन सहाय का उपन्यास 'देहाती दुनिया' या फणीश्वरनाथ रेणु का

उपन्यास 'मैला आँचल' पढ़ें तो वहाँ औपनिवेशिक पुलिस का अत्याचार और उसका ग्रामीण जनता पर भय देख सकते हैं। औपनिवेशिक भारत में पुलिस ने स्थानीय दबंग तबकों से एक गठजोड़ कर लिया था। वे दोनों मिलकर कमजोर लोगों पर हिंसा करते थे। गाँधी ने ग्रामीणों के मन से दबंग, प्रभावशाली लोगों और पुलिस का भय निकाल दिया। 'मैला आँचल' उपन्यास के बावनदास की शहादत उसके इसी निर्भय भाव का प्रकटीकरण थी। अपनी स्मृति पर जोर डालिये तो आपको अपने आस–पास ऐसे बावनदास मिल जाएंगे जिनकी भौतिक काया चाहे बहुत ही क्षीण रही हो लेकिन उनका आत्मिक बल बहुत ही ऊँचा था। और उपनिवेश मे जकड़ी हुई भारतीय जनता में यह आत्मबल ऐसे ही नहीं आया था। 1916 में बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी में दिए गए उनके भाषण को याद कीजिए जिसमें उन्होंने भारतीय राजे–महाराजाओं के सामने ही उनको लताड़ लगायी थी। मेरी जानकारी में भारतीय इतिहास में यह पहला अवसर था जब किसान की तरह दिखने वाले किसी व्यक्ति ने सूटेड–बूटेड और हीरे जवाहरात से लदे भारतीय अभिजात्य वर्ग की खुली निंदा की। इसी भाषण में उन्होंने भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंग्ज की खिंचाई की और कहा कि वे अपने पुलिस बल के द्वारा जनता के बीच भय स्थापित करना चाहते हैं जबकि वायसराय अंदर से खुद डरे हुए हैं। ऐसे डरे हुए व्यक्ति का मर जाना ही श्रेयस्कर है। यह गाँधी वायसराय के लिए कह रहे थे ! आप देखिए कि गाँधी इसे अपने पिछले एक वर्ष के अनुभव के आधार पर भारतीय लोगों से साझा कर रहे रहे थे कि डरी हुई तो सरकार है लेकिन किसान और विद्यार्थी क्यों डरे हुए हैं? उन्हें नहीं डरना चाहिए। गाँधी जानते थे कि यह निडरता ही भारतीय जनों को आजादी दिलाएगी। आप फिर 1942 के भारत के देखिये। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान उन्होने कहा कि अंग्रेज शासकों से डरने की जरूरत नहीं है। उन्होने कहा कि या तो हम आजाद होंगे या आजादी हासिल करने की कोशिश मे अपनी जान दे देंगे। जो गाँधी लोगों को निर्भीक बना रहे थे, वे अब लड़ाई के सबसे अगले मोर्चे पर थे। भय से मुक्ति ही आजादी है। आज से लगभग सौ वर्ष पहले गाँधी ने जो काम शुरू किया, उसके लिए गाँधी को याद किया जाना चाहिए। यह निर्भय–भाव आज का कोई राजनेता देने में सक्षम नहीं है कि वह अपने लोगों से कहे कि उसे किसी से डरने की जरुरत नहीं है। उलटे सरकारें और उनकी पुलिस नागरिकों को लगातार डराती रहती हैं। यह आजादी के बाद से अब तक बदस्तूर जारी है। लोगों को डराकर कर रखने और उन पर पहरा लगाने की औपनिवेशिक परियोजना को दक्षिण एशिया की सरकारों ने न केवल बनाए रखा बल्कि उसकी व्यापकता और गहनता भी बढ़ा दी।

गाँधी हमारे उस समय के लिए जरुरी हैं जिसमें हम रह रहे हैं और कल प्रवेश कर जाएंगे। गाँधी से पहले 1857 के विद्रोह ने और दादाभाई नौरोजी तथा उनके समकालीनों ने स्पष्ट कर दिया था कि भारत अंग्रेजों का गुलाम बन चुका है। 1909 में गाँधी ने अपनी छोटी सी किताब 'हिंद स्वराज' में इस बात को साफ किया कि भारत कैसे गुलाम है और उससे मुक्ति कैसे पाएगा। इस गुलामी से निजात पाने के लिए गाँधी ने रास्ते खोजे। यह रास्ता अहिंसा का था जिसने भारत की आजादी की लड़ाई को आगे ले जाने के साथ–साथ उसके नजरिये और प्रतिमानों को संवारने का काम किया।

वास्तव में भारत की आजादी की लड़ाई एक ही समय में ब्रिटेन से मुक्ति पाने के साथ ही साथ सुंदर मनुष्य बनाने का संघर्ष भी थी जिसकी बेहतरीन शुरुआत गाँधी ने की। यूरोप में धर्म और राज्य के चंगुल से मनुष्य की मुक्ति की खोज नवजागरण के दौर में की गयी थी लेकिन गाँधी के नेतृत्व में राज्य के चंगुल से मुक्त लेकिन धार्मिक मनुष्य की परिकल्पना गाँधी की अपनी खोज थी। उन्होंने भारतीय मनीषा को बहुत ध्यान से देखा था और पाया कि भारतीय मनुष्य को लालच, हिंसा और भय से मुक्त किया जा सकता है लेकिन उसे धर्म से मुक्त नहीं किया जा सकेगा। श्रीलंका की सीमा को छूते तमिल मछुआरों के गाँव हों या युसुफजाई

कबीले के लड़ाकू पठान– गाँधी ने अत्याचारी से लड़ने का एक सलीका सिखाया जिसके कारण अहिंसक और घृणा विहीन आजादी का आंदोलन चला। इस दौरान जिन समूहों ने शुरुआती दौर में हिंसा अपनायी, उन्होंने एक समय के बाद गाँधी वादी अहिंसक रास्तों में अपनी गुंजाइश तलाशी।

आप देखिए कि 1919 में अंग्रेजों ने जलियाँवाला बाग कांड किया और सैकड़ों निर्दोष लोगों को मार डाला लेकिन इस घटना के बाद किसी अँगरेज को इसलिए गोली नहीं मारी गयी या गाली नहीं दी गयी वह ब्रिटेन का है या उसका रंग गोरा है जबकि अफ्रीका के कई मुल्कों में अंग्रेजों के प्रति घृणा का चरम प्रदर्शन और हिंसा एक सच रहा है।

इस घृणा और हिंसा के बीज को गाँधी ने औपनिवेशिक लालच, पूंजीवाद के विस्तार और अंधी औद्योगिक प्रगति में दिखाया और कहा कि जब भारत को आजादी मिलेगी तो उसे इनसे भी आजादी मिलेगी। ऐसा नही हुआ। और अगर ऐसा नहीं हुआ तो उसके परिणाम हमारे सामने हैं।

खुदमुख्तारी की तलाश में ब्रेख्त ने गैलीलियो के जीवन पर एक नाटक लिखा था। इस नाटक में एक संवाद आता है कि दुर्भाग्यशाली है वह देश जिसे नायकों की जरुरत होती है। इसका आशय है कि नायक पूजा बुद्धि–विवेक विहीन भीड़ पैदा करती है जबकि किसी समाज को अपना शासन चलाने और स्वतंत्र सोच का मालिक होना चाहिए।

जब भारत को ब्रिटिश शासन ने गुलाम बनाया तो उसने तर्क दिया भारतीय जनों में अपनी शासन पद्धति विकसित करने की क्षमता नहीं है, वे खुदमुख्तार नहीं हो सकते। गाँधी और उनके समकालीनों ने इस विचार को सिरे से खारिज कर दिया। 1909 में उन्होंने गुजराती में 'हिंद स्वराज' नामक एक पतली पुस्तक लिखी। इसमें उन्होंने कहा कि भारत को उन नियामतों से किनारा कर लेना चाहिए जो ब्रिटिश शासन की देन समझी जातीं हैं, मसलन वकील और कचेहरी। इसके स्थान पर उन्होंने भारतीयों से खुद का शासन चलाने की बात की। लगभग बीस वर्ष बाद वे काफी लोकप्रिय हो चुके और भारत की आजादी की लड़ाई का मुख्य चेहरा बन चुके थे। इसी दौर में उन्होंने ब्रिटिश शासन की हुक्मउदूली के लिए नमक कानून तोड़ा। गुजरात के नवसारी जिले में दांडी के समुद्रतट पर उन्होंने कहाः 'यह लड़ाई किसी एक मनुष्य की नहीं, करोड़ों की है। यदि तीन–चार आदमी ही लड़कर स्वराज प्राप्त कर सकते हों तब तो देश की शासन–सत्ता भी उन तीन–चार आदमियों के हाथ में चली जाएगी। अतः स्वराज की इस लड़ाई में तो करोड़ों आदमियों को अपना बलिदान देकर ऐसा स्वराज्य हासिल करना है जो करोड़ों के लिए लाभदायी हो।

यह वक्त है कि गाँधी को याद किया जाय और अपने आपसे पूछा जाय कि देश की शासन–सत्ता कुछ हाथों में क्यों सिमटकर रह गयी है?

मेरी पीढ़ी के गाँधी

जिसे सलमान रश्दी आधी रात की संतानें कहते हैं, उसने तो गाँधी के बारे में अपने माता–पिता और आसपास के लोगों से सुना और समझा था। उसमें से कुछ ने गाँधी के उन मूल्यों को अपनाने की कोशिश की जिसके लिए वे जिए और मरे। 1980 के बाद जन्मी मेरी पीढ़ी ने गाँधी को किताबों और फिल्मों के जरिये जाना–समझा है। जो लोग जागरूक और राजनीतिक रहे हैं, उन्होंने उनकी तलाश भारत के विभिन्न भागों में चलने वाले आंदोलनों में की। गाँधी कश्मीर, मणिपुर, तिन्नेवली से लेकर लखनऊ में राज्य पुलिस की लाठी खाती आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के दैनिक संघर्षों में दिखते हैं। उन्होंने गाँधी को शहर के कोतवाल के ऑफिस के बाहर लाठी खाते हुए देखा है। मेरी उम्र के कुछ लोग उन लोगों के बीच जाकर उनका हाथ पकड़कर खड़े हो जाते हैं। गाँधी ने उन्हें निर्भय बनाया है।

तुम्हारे साथ क्या हुआ था?

अभी पिछले वर्ष प्रकाशित हुई किताब 'व्हाई गाँधी स्टिल मैटर्स' में राजमोहन गाँधी एक वाकये का जिक्र करते हैं। अगस्त 1946 में मोहम्मद अली जिन्ना ने भारतीय उपमहाद्वीप के मुस्लिमों से सीधी कार्यवाही में भाग लेने को कहा। थोड़ी साफ भाषा में कहें तो उन्होंने पाकिस्तान की प्राप्ति के लिए साधनों की परवाह न करते हुए लोगों को हिंसा के लिए उकसाया। दंगे हुए। लोगों के घर जला दिए गए और औरतों का बलात्कार हुआ जो आने वाले दो वर्षों

के लिए रेडक्लिफ रेखा के दोनों ओर की सच्चाई बन गया। अविभाजित बंगाल और बिहार जल उठा। इस हिंसा से बेहद खिन्न गाँधी ने मार्च 1947 में बिहार का दौरा किया। उन्होंने कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए कहा : इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि बड़ी संख्या में कांग्रेस के लोगों ने इन गड़बड़ी में भाग लिया या नहीं... आपकी 132 सदस्यीय कमेटी के कितने लोग इसमें संलिप्त थे? मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि किसी 110 वर्ष की बूढ़ी महिला को अपनी आँखों के सामने बोटी–बोटी काटे जाते हुए देखकर तुम कैसे जिंदा रह सकोगे? न तो मैं आराम करूँगा और न किसी को करने दूँगा। मैं पैदल ही पूरा बिहार घूमूँगा और उन कंकालों से पूछूँगा कि तुम्हारे साथ क्या हुआ था? जब देश को आजादी मिलने ही वाली थी, संविधान बनाया जा रहा था तब गाँधी ने जो कहा, उससे बढ़कर लिखा और उससे भी बढ़कर किया।

गांधी तो हमारा भोला है

अकबर इलाहाबादी

गांधी तो हमारा भोला है,
और शेख ने बदला चोला है
देखो तो खुदा क्या करता है,
साहब ने भी दफ्तर खोला है
आनर की पहेली बूझी है,
हर इक को तअल्ली सूझी है
जो चोकर था वह सूजी है,
जो माशा था वह तोला है
यारों में रकम अब कटती है,
इस वक्त हुकूमत बटती है
कम्पू से तो जुल्मत हटती है,
बे-नूर मोहल्ला-टोला है।

बापू महान

नागार्जुन

बापू महान, बापू महान!
ओ परम तपस्वी परम वीर
ओ सुकृति शिरोमणि, ओ सुधीर
कुर्बान हुए तुम, सुलभ हुआ
सारी दुनिया को ज्ञान
बापू महान, बापू महान ।।
बापू महान, बापू महान
हे सत्य-अहिंसा के प्रतीक
हे प्रश्नों के उत्तर सटीक
हे युग निर्माता, युगाधार
आतंकित तुमसे पाप-पुंज।
आलोकित तुमसे जग जहान!
बापू महान, बापू महान।।
दो चरणों वाले कोटि चरण
दो हाथों वाले कोटि हाथ
तुम युग-निर्माता, युगाधार
रच गए कई युग एक साथ
तुम युग-निर्माता, युगाधार
रच गए कई युग एक साथ।
तुम ग्रामात्मा, तुम ग्राम प्राण
तुम ग्राम हृदय, तुम ग्राम दृष्टि
तुम कठिन साधना के प्रतीक
तुमसे दीपित है सकल सृष्टि।

गांधी, हिन्दी, हिन्दुस्तानी

डॉ. श्रीभगवान सिंह

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए उसका प्रचार–कार्य बहुतों ने किया, लेकिन इनमें सर्वाधिक अवदान महात्मा गाँधी का रहा। गाँधीजी के अनेक विचारों तथा कार्यों से असहमति रखने वाले डॉ. रामविलास शर्मा जैसे सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी लेखक भी अपनी पुस्तक 'भाषा और समाज' में यह स्वीकार करते हैं ''वह (गाँधीजी) भारत के उन नेताओं में थे, जो अहिन्दी भाषी होते हुए भी देश में सर्वत्र, और उत्तर भारत में विशेष रूप से, अपने हिन्दी भाषणों द्वारा जनता को मोह लेते थे।..... कुछ लोग, विशेषकर कुछ हिन्दी–भाषी और साहित्य–सम्मेलन के कर्णधार हिन्दुस्तानी की समस्या को लेकर गाँधीजी से रुष्ट थे। लेकिन दक्षिण भारत में गाँधीजी और उनके अनुयायियों–सहयोगियों ने जितना हिन्दी प्रचार किया है, उतना और किसी नेता, राजनीतिक पार्टी या सांस्कृतिक संस्था ने नहीं किया है। ''फिर डॉ. शर्मा अपनी दूसरी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण में लिखते हैं' ''उन दिनों भारत में ऐसे दो व्यक्ति थे जो अंग्रेजी की जगह राजभाषा, केन्द्रीय भाषा अथवा सम्पर्क–भाषा के रूप में अखिल भारतीय व्यवहार के लिए हिन्दी का समर्थन कर रहे थे और इसके साथ–साथ प्रादेषिक स्तर पर अंग्रेजी के विरुद्ध भारतीय भाषाओं के व्यवहार का समर्थन कर रहे थे। एक थे महात्मा गाँधी और दूसरे महावीर प्रसाद द्विवेदी। ''फिर निराला की साहित्य–साधना, (भा.2) में डॉ. शर्मा निराला की दृष्टि में महात्मा गाँधी के महत्व की चर्चा करते हुए लिखते हैं– ''सत्याग्रह द्वारा अंग्रेजी राज का विरोध, अछूतोद्धार के लिए उपवास, अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए प्रचार– निराला की दृष्टि में गाँधीजी को महापुरुष बनाने वाले ये तीन कार्य थे।''

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि निराला हों या डॉ. रामविलास शर्मा, ये लोग देश की सम्पर्क–भाषा या राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के लिए गाँधी जी द्वारा किये गये कार्यों को महत्वपूर्ण मानते हैं। लेकिन इधर हिन्दी के कुछेक आचार्य, जो हिन्दी की बदौलत यश और धन अर्जित करते रहे हैं, अपने को अत्यधिक 'सेक्यूलर' सिद्ध करने के नशे में यह बताने लगे हैं कि गाँधी जी राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के नहीं, हिन्दुस्तानी के पक्षधर थे। अब गाँधी जी हिन्दी के पक्षधर थे या हिन्दुस्तानी के, यह जानने के लिए उनकी विचार–यात्रा को देखना जरूरी है। इसे हमें दो चरणों में विभक्त करके देखना पड़ेगा– पहला चरण है 1909 से 1935 तक, तो दूसरा है 1936 से उनके जीवन के अन्त तक।

हिन्दी को भारत की सम्पर्क–भाषा या राष्ट्रभाषा मानने तथा बनाने का विचार गाँधी जी के दिमाग में दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए ही आ गया था। वहाँ पर भारत के उत्तरी एवं दक्षिणी प्रदेशों से गये हुए विभिन्न भाषा–भाषी गिरमिटिया मजदूरों तथा कारोबारियों के निकट सम्पर्क में रहते हुए उन्हें अच्छी तरह महसूस हो गया था कि भारत के बहुभाषा–भाषी प्रदेशों के बीच अगर काई सम्पर्क भाषा होने के योग्य है, तो वह हिन्दी ही है। इस बात का इजहार उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए अपनी लिखी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में किया। यह पुस्तक डरबन के पास स्थित उनके फीनिक्स आश्रम से प्रकाशित होनेवाले पत्र 'इंडियन ओपिनियन' के नवम्बर, दिसम्बर 1909 के अंकों में पहली दो किश्तों में छप कर आई, फिर 1910 में यह पुस्तकाकार रूप में छपी जो गुजराती में लिखे मूल का अंग्रेजी अनुवाद था। इस पुस्तक के 'शिक्षा' शीर्षक प्रकरण में गाँधी जी ने दो टूक शब्दों में कहा–''हर एक पढ़े–लिखे हिन्दुस्तानी को अपनी भाषा का, हिन्दू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को फारसी का और सबको हिन्दी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिन्दुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों और पारसियों को संस्कृत सीखनी चाहिए। सारे हिन्दुतान के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिन्दी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट

रहनी चाहिए। हिन्दू–मुसलमानों के संबंध ठीक रहें, इसलिए बहुत से हिन्दुस्तानियों को इन दोनों लिपियों को जान लेना जरूरी है।''

ज्ञातव्य है कि 9 जनवरी 1915 को गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका से भारत वापस आ गये। देश की सम्पर्क–भाषा के रूप में हिन्दी को लेकर उनकी जो समझ बनी थी, उसे यहाँ पर मूर्त्त करने के अभियान में वे संलग्न हो गये। यह बात ध्यान में रखने की है कि ब्रिटिश राज के विरुद्ध गाँधी ने सत्याग्रह का आरंभ 1920 में असहयोग आंदोलन से किया, लेकिन राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का राष्ट्रव्यापी प्रचार उन्होंने उसके पहले ही शुरू कर दिया था। वे विभिन्न प्रांतों का भ्रमण करते हुए लोगों से हिन्दी सीखने तथा अपनाने की गुहार लगाने लगे। मसलन, गुजरात से सुदूर बिहार के भागलपुर शहर में 15 अक्टूबर 1917 को वे पहुँचे जहाँ छात्रों के एक सम्मेलन को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा–''आज मुझे अध्यक्ष का पद देकर और हिन्दी में व्याख्यान देने और सम्मेलन का काम हिन्दी में चलाने की अनुमति देकर आप विद्यार्थियों ने मेरे प्रति अपने प्रेम का परिचय दिया है।... इस सम्मेलन का काम इस प्रांत की भाषा में ही–और वही राष्ट्रभाषा भी है–करने का निश्चय करके आपने दुरन्देशी से काम लिया है। इसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। मुझे आशा है कि आप लोग यह प्रथा जारी रखेंगे।''

ध्यातव्य है कि गाँधी जी ने इस भाषण में ही जतला दिया था कि बिहार प्रांत की भाषा हिन्दी है जो वहाँ की मातृभाषा भी है और वही राष्ट्रभाषा है। अप्रैल 1917 से ही भोजपुरी इलाके चम्पारण में निलहे अंग्रेजों के खिलाफ सत्याग्रह चलाने वाले गाँधी जी जरूर अवगत होंगे कि यहाँ पर भोजपुरी, वज्जिका या मैथिली जैसी भी बोलियाँ हैं, लेकिन उन सबको कदाचित हिन्दी के अर्न्तगत मानते हुए उन्होंने हिन्दी को बिहार प्रांत की भाषा कहा और उसे राष्ट्रभाषा की संज्ञा दी। अब गाँधीजी सम्पर्क–भाषा के बजाय हिन्दी के लिए राष्ट्रभाषा का प्रयोग करने लगे। इसके बाद 20 अक्टूबर गुजरात के भड़ौच में हुए द्वितीय शिक्षा–सम्मेलन में उन्होंने अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाने की दलील को खारिज करते हुए कहा–''हम जरा गहराई से देखें तो पता चलेगा कि अंग्रेजी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती, और न उसका प्रयत्न किया जाना चाहिए। तब राष्ट्रभाषा के क्या लक्षण होने चाहिए, इस पर विचार करें– (1) वह भाषा सरकारी नौकरों के लिए आसान होनी चाहिए (2) उस भाषा के द्वारा भारत का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक कामकाज शक्य होना चाहिए। (3) उस भाषा को भारत के ज्यादातर लोग बोलते हों (4) वह भाषा राष्ट्र के लिए आसान होनी चाहिए। (5) उस भाषा का विचार करते समय क्षणिक या अस्थायी स्थिति पर जोर न दिया जाए। अंग्रेजी भाषा में इनमें से एक भी लक्षण नहीं है।... यह माने बिना काम चल ही नहीं सकता कि हिन्दी भाषा में ये सारे लक्षण मौजूद हैं। हिन्दी भाषा मैं उसे कहता हूँ जिसे उत्तर में हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी या फारसी लिपि में लिखते हैं।''

गुजरात के बाद 11 नवम्बर 1917 को बिहार के मुजफ्फरपुर में भाषण करते हुए गाँधी जी ने कहा – ''मैं कहता आया हूँ कि राष्ट्रीय भाषा एक होनी चाहिए और वह हिन्दी होनी चाहिए। हिन्दी भाषा से मेरा मतलब उस भाषा से है जिसे उत्तर भारत में हिन्दू और मुसलमान दोनों बोलते हैं और जो नागरी तथा उर्दू लिपि में लिखी जाती है।'' इसके बाद 31 दिसम्बर 1917 को कोलकाता के विश्वविद्यालय भवन में 'बाम्बे एण्ड बंगाल ह्यूमैनिटेरियन फण्ड्स' के तत्वावधान में आयोजित सभा की अध्यक्षता करते हुए गाँधी जी ने कहा– ''देश–सेवा करने के लिए उत्सुक सब हैं, परन्तु राष्ट्रसेवा तब तक संभव नहीं जब तक कोई राष्ट्रभाषा का प्रयोग न हो। दुख की बात है कि हमारे बंगाली भाई राष्ट्रभाषा का प्रयोग न करके राष्ट्रीय हत्या कर रहे हैं। इसके बिना देश की आम जनता के हृदय तक नहीं पहुँचा जा सकता। इस अर्थ में बहुत लोगों द्वारा हिन्दी को काम में लाया जाना मानवतावाद के क्षेत्र की बात हो जाती है।''

यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है कि 'राष्ट्रभाषा का प्रयोग न करके राष्ट्रीय हत्या' तथा उसे 'मानवतावाद के क्षेत्र की बात' कहने वाले गाँधीजी कदाचित पहले भारतीय नेता थे। वे अब हिन्दी के लिए सम्पर्क–भाषा के बजाय राष्ट्रभाषा का प्रयोग करने लगे थे। राष्ट्रसेवा के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी सीखने की अनिवार्यता पर बल देते हुए हिन्दी सीखने के कार्य को वे देशसेवा का पर्याय बनाते गये। गाँधी जी के राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति बढ़ते हुए उत्साह एवं प्रेम को देखते हुए मार्च 1918 में इंदौर में हुए हिन्दी साहित्य–सम्मेलन का अध्यक्ष बनाया गया। वहाँ अपना अध्यक्षीय भाषण देते हुए गाँधी जी ने फिर इस बात पर जोर दिया – ''हमें अब उपनी मातृभाषा की उपेक्षा करके उसकी हत्या नहीं करनी चाहिए। जैसे अंग्रेज अपनी मादरी जबान अंग्रेजी में बोलते हैं और उसे ही व्यवहार में लाते हैं, वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनने का गौरव प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बना कर हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।''

इसी भाषण में उन्होंने यहाँ तक कहा कि ''यदि हमें स्वराज्य का आदर्श पूरा करना है तो हमें एक ऐसी भाषा की जरूरत पड़ेगी ही जिसे देश की विशाल जनता आसानी से समझ और सीख सके। ऐसी भाषा तो सदा से हिन्दी या उर्दू ही रही है। मुझे मद्रास प्रांत की जनता की देशभक्ति, आत्मत्याग और बुद्धिमता पर काफी भरोसा है। मैं जानता हूँ कि जो भी लोग राष्ट्र की सेवा करना चाहेंगे या अन्य प्रांतों के साथ सम्पर्क रखना चाहेंगे, उनको त्याग करना ही पड़ेगा, यदि हिन्दी सीखने को त्याग ही माना जाए।''

इस प्रकार 1920 में राष्ट्रव्यापी ब्रिटिश राज विरोधी असहयोग आंदोलन शुरु करने के पहले से ही गाँधी जी राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी–जागरण का कार्य शुरु कर चुके थे और 'भारतेन्दुकालीन हिन्दी नवजागरण' का विस्तार सुदूर दक्षिण तक करने में लगे थे। यह भी उल्लेखनीय है कि गाँधी जी राष्ट्रभाषा के लिए लगातार 'हिन्दी' शब्द का ही प्रयोग कर रहे थे, न कि हिन्दुस्तानी शब्द का – यह तथ्य उन लोगों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए जो यह कहते थकते नहीं कि गाँधी जी तो सिर्फ हिन्दुस्तानी के पक्षधर थे। दूसरी बात यह हुई कि इंदौर–साहित्य–सम्मेलन के तुरंत बाद ही 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार–सभा' का गठन हुआ जिसमें बाबू शिवप्रसाद गुप्त, पुरूषोत्तमदास टंडन, पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी जैसे प्रमुख व्यक्ति शामिल हुए, गाँधी जी ने अपने सबसे छोटे पुत्र देवदास गाँधी को भी इस कार्य में लगा दिया। गाँधी जी के इन प्रयासों का ही परिणाम था कि हिन्दी के प्रति उदासीन रहनेवाले लोकमान्य तिलक, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि भी हिन्दी सीखने लगे, क्योंकि गाँधी जी ने राष्ट्रभाषा के सवाल को स्वराज्य का अभिन्न अंग बनाते हुए स्वराज्य के लिए किये जाने वाले त्याग के समकक्ष हिन्दी सीखने के कार्य को ला खड़ा किया। निस्संदेह राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी सीखने के कार्य को इतनी अहमियत उनके पहले किसी ने नहीं दी थी। मसलन, 13 सितम्बर 1920 को कोलकाता में भाषण करते हुए उन्होंने कहा – ''यह निश्चित है कि सारे देश में जहाँ कहीं देश के विभिन्न हिस्सों में लोगों की मिली–जुली सभाएँ और बैठकें होंगी उनमें अभिव्यक्ति का राष्ट्रीय माध्यम हिन्दी ही होगी।''

मार्च 1922 में असहयोग–आंदोलन को गाँधी जी ने स्थगित कर दिया, किन्तु राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का प्रचार स्थगित नहीं किया, वह चलता ही रहा। मसलन, 24 मार्च 1925 को 'हिन्दी–प्रचार–कार्यालय' मद्रास में बोलते हुए उन्होंने यह कहा– ''मेरी राय में भारत में सच्ची राष्ट्रीयता के विकास के लिए हिन्दी का प्रचार एक जरूरी बात है विशेष रूप से इसलिए कि हमें उस राष्ट्रीयता को आम जनता के अनुरूप साँचे में ढालना है।'' यहाँ भी उन्होंने 'हिन्दी' शब्द का ही प्रयोग किया, न कि हिन्दुस्तानी का। मद्रास में ही 20 दिसम्बर 1933 को एक छात्र–सभा को संबोधित करते हुए गाँधी जी ने कहा– ''मैं इस चेतावनी के साथ अपना भाषण समाप्त करता हूँ कि जब आप अपने कंधों पर देश का भार संभालेंगे उस समय यदि आपको हिन्दी या हिन्दुस्तानी न आती हुई हो, तो

आपको बहुत बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा।'' फिर 21 दिसम्बर 1933 को ही पेराम्बुर की मजदूर सभा में उन्होंने कहा– ''साथी मजदूरो, यदि आप सारे भारत के मजदूरों के दुख–सुख को बाँटना चाहते हैं, उनके साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहते हैं, तो आपको हिन्दुस्तानी सीख लेनी चाहिए। जब तक आप ऐसा नहीं करते तब–तक उत्तर और दक्षिण में कोई मेल नहीं हो सकता।''

इन भाषणों में गाँधी जी को हम 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग करते देखते हैं, लेकिन तब वे हिन्दुस्तानी का प्रयोग हिन्दी के अर्थ में ही करते थे। 'हिन्दी' शब्द को उन्होंने छोड़ा नहीं। मसलन, 22 दिसम्बर 1933 को ही मद्रास में 'हिन्दी–प्रचार–सभा' के दीक्षान्त समारोह में भाषण देते हुए उन्होंने कहा– ''दक्षिण भारत में, जैसा कि मैंने देखा है विशेषरूप से आन्ध्रप्रदेश में हिन्दी–प्रचार की सुस्थिर रूप से प्रगति हुई है। लेकिन मुझे तब तक संतोष नहीं होगा जब तक कि प्रत्येक व्यक्ति हिन्दी इतनी काफी न समझने लगे कि फिर कोई व्यक्ति मुझसे अंग्रेजी में बोलने को न कहे।.... अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा या तमिल जैसी कठिन भाषा पर अधिकार करने में हमें कठिनाई नहीं होती। इसलिए हिन्दी के मामले में हमें बहुत कठिनाई क्यों होनी चाहिए? फिर हिन्दी 35 करोड़ में 22 करोड़ भारत वासियों की भाषा है और इसका भारत की सर्वमान्य भाषा होना निश्चित है।''

अप्रैल 1935 में इन्दौर में सम्पन्न हुए चौबीसवें हिन्दी साहित्य–सम्मेलन में भी सभापति के रूप में भाषण करते हुए गाँधी जी ने कहा– ''अगर हिन्दुस्तान को सचमुच एक राष्ट्र बनाना है, तो चाहे कोई माने या न माने, राष्ट्रभाषा तो हिन्दी ही बन सकती है, क्योंकि जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषा को कभी नहीं मिल सकता। हिन्दू–मुसलमान दोनों को मिलाकर करीब बाईस करोड़ मनुष्यों की भाषा थोड़े–बहुत फेरफार से हिन्दी–हिन्दुस्तानी ही है। मैंने अभी हिन्दी–हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग किया है। सन् 1918 में जब आपने मुझको यही पद दिया था तब भी मैंने यही कहा था कि हिन्दी उस भाषा का नाम है जिसे हिन्दू और मुसलमान कुदरती तौर पर बगैर प्रयत्न के बोलते हैं। हिन्दुस्तानी और ऊर्दू में कोई फर्क नहीं है। देवनागरी लिपि में लिखे जाने पर वह हिन्दी और फारसी में लिखी जाने पर ऊर्दू कही जाती है।''

इस प्रकार देखा जाए तो गाँधी जी 1909 (हिन्दी स्वराज का प्रकाषन वर्ष) से 1935 तक राष्ट्रभाषा के लिए हिन्दी शब्द का ही प्रयोग करते रहे, हिन्दी पूरे देश की राष्ट्रभाषा के रूप में मान्य हो सके, इसके लिए वे अपने भाषणों, लेखों से समझाते रहे कि कैसे वह पूरे देश में फैली हुई है, कैसे उसे सीखना अन्य भाषाओं की तुलना में अधिक आसान है। हालांकि इस दौरान भी उन्होंने हिन्दी के साथ–साथ कभी–कभार हिन्दुस्तानी शब्द का भी प्रयोग किया था, लेकिन तब उनका आशय इन दोनों शब्दों से एक ही भाषा का होता था। किन्तु 1936 से वह दूसरा चरण शुरु हुआ जब गाँधी जी हिन्दी और हिन्दुस्तानी को अलग–अलग मानते हुए राष्ट्रभाषा के लिए हिन्दुस्तानी के पक्ष में झुकते गये। हिन्दुस्तानी के पक्ष में होना गाँधी जी की स्वेच्छा से नहीं था, बल्कि उस समय की उन परिस्थितियों का दबाब था जब कुछेक कट्टरपंथी मुसलिम बुद्धिजीवी गाँधी जी को पत्र लिख कर हिन्दी के बजाय हिन्दुस्तानी–भाषा कहने–अपनाने का दबाब डालने लगे। एक मुसलमान मित्र का पत्र गाँधी जी ने 16.05.1936 को 'हरिजन सेवक' में छापा। उसके कुछ अंश गौरतलब हैं – ''अगर हमारी कौमी जबान उर्दू नहीं कहला सकती तो कम–अज–कम उसका नाम ऐसा होना चाहिए जिससे जाहिर हो कि मुसलमानों ने एक ऐसी जबान बनाने की कोशिश की जो करीब–करीब कौमी जबान कही जा सकती है। हिन्दुस्तानी से यह मतलब पूरा हो सकता है, हिन्दी से नहीं हो सकता। अगले जमाने में मुसलमान हिन्दी सीखते थे, उसे एक अदबी जबान की हैसियत देने में उन्होंने अपने हिन्दू–भाइयों से ज्यादा नहीं तो उतनी कोशिश तो की ही थी। लेकिन अदबी हैसियत के अलावा हिन्दी की एक मजहबी और तहजीबी हैसियत

है, जिसे मुसलमानों की पूरी जमात अपना नहीं सकती।''

इसी पत्र में उन मुसलिम सज्जन ने प्रेमचंद की पत्रिका 'हंस' को लेकर यह शिकायत पश की –'' 'हंस' पढ़ने से यह ख्याल होता है कि वह किसी खास मजहबी समाज का रिसाला है। उसकी जबान में दूसरे हिन्दी रिसालों से ज्यादा संस्कृत के अल्फाज मिलते हैं और इस जबान को हिन्दुस्तानी कहना ऐसा ही होगा जैसे उसको अंग्रेजी कहना। इसके नुक्तेनजर में और उसके मजमूनों में कोई ऐसी बात नहीं है कि जिससे पता चले कि हिन्दुस्तानी कौम एक समाज है, जो बहुत–से समाजों से बना है, या यह कि हिन्दुस्तान में एक तहजीव के अलावा कोई ओर तहजीब भी है। यह तो मेल न हुआ, हकूमत हुई।'' ऐसी शिकायत करते हुए उन सज्जन ने यह सुझाव दिया कि ''हमारी कौमी जबान हिन्दी नहीं कहलायेगी, बल्कि हिन्दुस्तानी, हिन्दुस्तानी का किसी एक मजहबी समाज के हिस्से से संबंध न होगा।''

ऐसी शिकायत भरे और पत्र भी गाँधी जी को मिलते रहे जिनमें हिन्दी को मजहबी जबान सिद्ध करते हुए हिन्दुस्तानी को कौमी जबान के रूप में अपनाने की अपील की जाती रही। इन शिकायतों से उस समय के पढ़े–लिखे मुसलिम समाज के उसे मिजाज का पता चलता है जो हिन्दी को हिन्दुओं की मजहबी जबान मानकर हिन्दुस्तानी को ही साझी भाषा समझने लगा था। ऐसे मिजाज को देखते हुए ही स्वाधीनता–आंदोलन की सफलता के लिए हिन्दू–मुसलिम एकता बनाये रखने की मंशा से गाँधी जी को हिन्दी की जगह पर हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग करने तथा हिन्दुस्तानी को हिन्दी से पृथक भाषा मानने को बाध्य होना पड़ा। वस्तुतः हिन्दी को मजहबी जबान के खाते में दर्ज करना अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण था जो पूर्णतः साम्प्रदायिक नजरिया था किसी भी भाषा के प्रति। वैसे कोई भी भाषा मजहबी नहीं होती। कुरान–शरीफ अरबी में लिखे जाने के बावजूद अरबी मजहबी भाषा नहीं हो जाती क्योंकि वह कुरान–शरीफ लिखे जाने के पहले से वजूद में थी। जहाँ तक हिन्दी का सवाल है, तो हिन्दुओं के मजहब संबंधी सारे मंत्र, जाप, अनुष्ठान तो संस्कृत में हैं, फिर वह मजहबी कैसे हो गई? वैसे संस्कृत भी भारतवर्ष की भाषा है, किसी खास मजहब विशेष की भाषा नहीं है। उसमें वेद, वेदान्त जैसे दर्शन हैं, तो लोकायत भी है, चार्वाक का दर्शन भी है। जिस हिन्दी में अमीर खुसरो, कुतबन, मंझन, जायसी, रहीम, रसखान शामिल हैं वह मजहबी जबान कैसे हो गई? सच तो यह है कि हिन्दी से हिन्द का आभास होता है, न कि हिन्दू का जबकि 'हिन्दुस्तानी' में तो 'हिन्दू' ही पहले बैठा हुआ है। लेकिन गाँधीजी हिन्दू–मुसलिम एकता को प्राथमिकता देते हुए हिन्दी के प्रति इस साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से मुठभेड़ नहीं कर सके और मजबूर होकर हिन्दुस्तानी के पक्ष में खड़े हो गये। यही एक ऐसा मुद्दा है जहाँ गाँधी 'मजबूरी' का नाम हो जाते हैं। वैसे वे दिल से हिन्दी के पक्ष में ही रहे। हिन्दुस्तानी के मामले में हिन्दी साहित्य–सम्मेलन से बढ़ते मतभेद के कारण जब उन्होंने पुरुषोत्तम दास टंडन को सम्मेलन से अलग होने का 13.06.1945 को जो पत्र लिखा, उसमें उन्होंने अपनी पीड़ा और इच्छा इन शब्दों में व्यक्त की थी – ''हिन्दी साहित्य–सम्मेलन से निकलना मेरे लिए कोई मजाक की बात नहीं है। लेकिन जैसे मैं कॉंग्रेस से निकला, तो कॉंग्रेस की ज्यादा सेवा करने के लिए उसी तरह अगर मैं सम्मेलन से भी निकला तो सम्मेलन की अर्थात् हिन्दी की ज्यादा सेवा करने के लिए निकलूँगा।''

गाँधी जी के इस कथन पर उनलोगों को अवश्य ध्यान देना चाहिए जो यह सिद्ध करने पर तुले हुए हैं कि गाँधीजी तो राष्ट्रभाषा के लिए हिन्दुस्तानी के पक्षधर थे। गाँधी की मजबूरी को ध्यान में न रखते हुए ऐसा कहना न गाँधी के साथ न्याय है, न हिन्दी के साथ। गाँधी अगर 'हिन्दी की ज्यादा सेवा करने' की बात कह रहे थे, तो जाहिर है कि वे एक मजहबी जबान की सेवा की बात नहीं कह रहे थे। हालांकि हिन्दू–मुस्लिम की एकता की वेदी पर हिन्दी को कुर्बान करने के बावजूद वे मजहबी आधार पर पाकिस्तान का बनना रोक नहीं सके। मजबूर गाँधी के साथ यही हुआ–''न खुदा ही मिला, न विसाले सनम, न इधर के रहे, न उधर के रहे।'' अतएव आज यह

विचारणीय हो जाता है कि क्या हम साम्प्रदायिक नजरिये का कायल होकर हिन्दी के वजाय हिन्दुस्तानी की बात करें या फिर भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से हिन्दी को ही भारतवर्ष की सर्वमान्य भाषा मानकर हिन्दी को अपनाये रखे? मेरी समझ में हमें सही बात कहनी चाहिए और गाँधी जी ने आजीवन सत्य–पथ का ही अनुगमन किया, इसलिए उन्हीं से प्रेरणा लेते हुए हम हिन्दी का ही न केवल हिन्दू–मुसलमान, बल्कि सिख, ईसाई आदि जो भी भारतवासी हैं, सबके लिए राष्ट्रभाषा के रूप में व्यवहार करें। 'आधा तीतर, आधा बटेर' वाली कहावत को चरितार्थ करनेवाली हिन्दुस्तानी का प्रयोग विफल हो चुका है। सूरीनाम, दक्षिण–अफ्रीका, मौरिशस जैसे देशों में तथा अमेरिका, यूरोप में भी रहनेवाले भारतवंशी हिन्दी को ही भारत की राष्ट्रभाषा मान कर चल रहे हैं, तभी तो लंदन, त्रिनिडाड जोहान्सवर्ग, न्यूयार्क, सूरीनाम, मौरिशस जैसे देशों में सफलतापूर्वक 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' के आयोजन हो चुके हैं। फिर हम क्यों 'मजबूर' गाँधी को हिन्दुस्तानी के लिए घसीटते रहें।

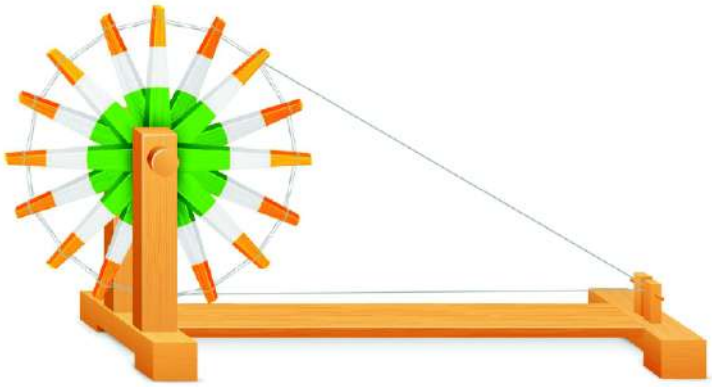

गांधी के प्रति

मुकुटधर पाण्डेय

तुम शुद्ध बुद्ध की परम्परा में आये
मानव थे ऐसे, देख कि देव लजाये
भारत के ही क्यों, अखिल लोक के भ्राता
तुम आये बन दलितों के भाग्य विधाता!
तुम समता का संदेश सुनाने आये
भूले-भटकों को मार्ग दिखाने आये
पशु-बल की बर्बरता की दुर्दम आंधी
पथ से न तुम्हें निज डिगा सकी हे गांधी!
जीवन का किसने गीत अनूठा गाया
इस मृत्युलोक में किसने अमृत बहाया
गूँजती आज भी किसकी प्रोज्वल वाणी
कविता-सी सुन्दर सरल और कल्याणी!

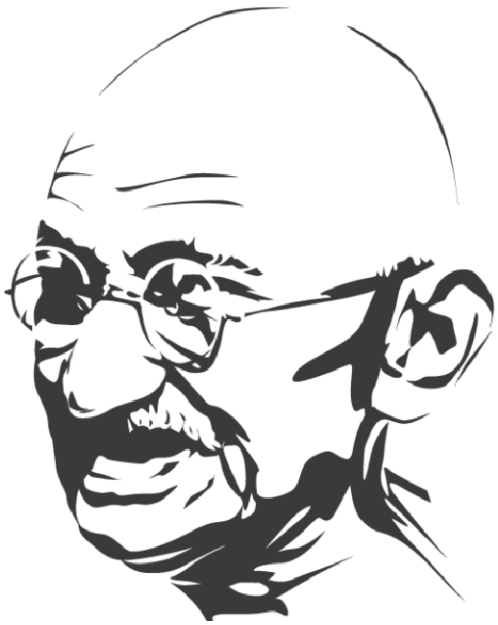

एक राष्ट्र की संस्कृति उसमें रहने वाले
लोगों के दिलों में और आत्मा में रहती है।

–महात्मा गाँधी

राजभाषा की गतिविधियाँ

मूर्ख मनुष्य क्रोध को जोर-शोर से प्रकट करता है,
किन्तु बुद्धिमान शांति से उसे वश में करता है।

-महात्मा गाँधी

राजभाषा की गतिविधियाँ